आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१८ * अंक-८ * अप्रैल-२०२४

हे जीव ! एक बार हर्ष तो ला कि 'अहो, मेरा आत्मा ऐसा !' कैसा ?—कि सिद्धभगवान जैसा । सिद्धभगवान जैसी ज्ञान–आनन्दकी परिपूर्ण शक्ति मेरे आत्मामें भरी पड़ी ही है, मेरे आत्माकी शक्ति नष्ट नहीं हो गई है । 'अरेरे ! मैं दब गया, विकारी हो गया, अब मेरा क्या होगा ?—इस प्रकार डर मत, हताश न हो । एक बार स्वभावका हर्ष ला, स्वरूपका उत्साह प्रगट कर, उसकी महिमा लाकर अपने पुरुषार्थको उछाल, तो तुझे अपने अपूर्व आह्लादका अनुभव होगा, और तू सिद्धपदको प्राप्त करेगा ।

—पूज्य गुरुदेवश्री

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• 'जो जिनदेव हैं, वह मैं हूँ, वही मैं हूँ'—इसकी भ्रांतिरहित होकर भावना कर। हे योगिन! मोक्षका कारण कोई अन्य मंत्र-तंत्र नहीं है।२८।

(श्री योगीन्द्रदेव, योगसार, गाथा-७५)

• सबसे उत्कृष्ट परमतत्त्व एक परमात्मा है। अपने ही उत्कृष्ट स्वभावके द्वारा वह पहिचाना जाता है। निश्चयसे आत्मा जो है, वही परमात्मा है। जिसके भीतर यह उत्तम तत्त्व प्रगट हो जाता है वह उत्तम मुक्तिपदसे जाकर मिल जाता है।२९।

(श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड, भाग-२, पृ. २७१)

• शुद्धनिश्चयसे शक्तिरूपसे सर्व जीव शुद्ध-बुद्ध एकस्वभावी होनेसे उपादेय है और व्यक्तिरूप पंचपरमेष्ठी ही उपादेय है। उसमें भी (पंच परमेष्ठी भी) अर्हंत और सिद्ध—इन दोनोंमें निश्चयसे सिद्ध ही उपादेय हैं और परमनिश्चयसे तो भोगाकांक्षादिरूप समस्त विकल्पजाल रहित परमसमाधिकाल में सिद्धसमान स्वशुद्धात्मा ही उपादेय हैं, अन्य सर्वद्रव्य हेय है।३०। (श्री नेमिचंद्र सिद्धांतिदेव, बृहद द्रव्यसंग्रह, अधि-१का उपसंहार)

• शब्दोंसे शब्दार्थका बोध होता है। शब्दोंसे पद जाना होता है। आत्मा परमात्माके बराबर है, यह जानना ही शास्त्रज्ञानका प्रयोजन है।३१।

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, गाथा-४९)

• शुद्धनयकी दृष्टिसे देखनेमें आवे तो सर्वकर्मोंसे रहित चैतन्यमात्र देव अविनाशी आत्मा अंतरंगमें स्वयं विराज रहा है। यह प्राणी पर्यायबुद्धि, बहिरात्मा उसे बाहर ढूंढता है, यह बड़ा अज्ञान है।३२। (श्री समयसार श्लोक-१२का भावार्थ)

• जगतिलक आत्माको छोड़कर परद्रव्यमें रमता है तो क्या मिथ्यादृष्टिके माथे पर सींग होते होंगे ? (श्रेष्ठ आत्मा को छोड़कर परमें रमणा करता है वह मिथ्यादृष्टि ही है।३३। (श्री मुनिवर रामसिंह, पाहुड दोहा, गाथा-७०)

• श्रुतकेवलीने कहा है कि तीर्थोंमें, देवालयोंमें देव नहीं है, जिनदेव तो देहके देवालयमें विराजमान है, ऐसा निश्चित समझो।३४। (श्री योगीन्द्रदेव, योगसार-४२)

• चैतन्यतत्त्व निश्चयसे स्वयंमें ही स्थित है, उस चैतन्यस्वरूप तत्त्वको जो अन्य स्थानमें स्थित समझता है वह मूर्ख मुट्ठीमें रखी हुई वस्तुको मानो प्रयत्नपूर्वक वनमें खोज रहा है।३५। (श्री पद्मनंदी आचार्य, सद्बोध चंद्रोदय अधि. श्लोक-९)

वर्ष-18
अंक-8

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
April
A.D. 2024

श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

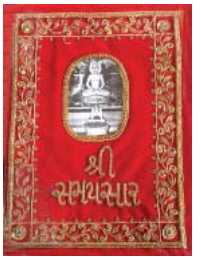

(समयसार गाथा–३२०)(गतांकसे आगे)

त्रिकालीसे कथंचित् भिन्न ऐसी शुद्ध पर्यायका आश्रय करनेलायक नहीं है

इसलिये ऐसा निश्चित् हुआ :–शुद्धपारिणामिकभाव विषयक (-शुद्धपारिणामिक-भावको अवलंबन करनेवाली) जो भावना उस रूप जो औपशमिकादिक तीन भावों वे समस्त रागादिसे रहित होनेके कारण शुद्ध-उपादानकारणभूत होनेसे मोक्षका कारण (मोक्षके कारण) है, लेकिन शुद्धपारिणामिक नहीं है (अर्थात् शुद्धपारिणामिकभाव मोक्षका कारण नहीं है)।

जो शक्तिरूप मोक्ष है वह तो शुद्धपारिणामिकभाव है, प्रथमसे ही विद्यमान है। यह तो व्यक्तिरूप मोक्षका विचार चलता है। (-गुजराती टीका)

इसलिये ऐसा निश्चित् हुआ–क्या निश्चित् हुआ?–कि आत्मा त्रिकाल पारिणामिकस्वभावभाव है और उसके लक्षसे जो मोक्षमार्ग प्रगट होता है वह पर्याय भी कथंचित् भिन्न है। उसका भाव ऐसा है कि मोक्षमार्गकी पर्याय क्षणिक होनेसे कथंचित् भिन्न है इसलिये उसका आश्रय लेने लायक नहीं है। वस्तु निजानंद प्रभु है, सच्चिदानंद स्वरूप है, वह परमस्वभावको पारिणामिकभाव कहते हैं। यह पारिणामिकभाव मोक्षका कारण नहीं

रे जानकर कुलयोनि, जीवस्थान मार्गण जीवके।
आरम्भ इनके से विरत हो प्रथमव्रत कहते उसे ॥५६॥
परमागम
श्री नियमसार

है। वास्तवमें तो मोक्षकी पर्यायमें स्वद्रव्य निमित्त है, उपादान नहीं है। मोक्षमार्ग है वह त्रिकाली सत्यार्थके आश्रयसे प्रगट होता है अर्थात् कि उसके लक्षसे प्रगट होता है तदपि प्रगट हुई जो पर्याय है वह पर्याय त्रिकालीसे भिन्न है। राग तो भिन्न है ही, उसकी तो बात भी नहीं है, वह तो उदयभाव है, बंधका कारण है, लेकिन यहां तो कहते हैं कि जो निश्चय मोक्षमार्गकी पर्याय है वह भी द्रव्यस्वभावसे कथंचित् भिन्न है।

विकारका कर्ता विकारी पर्याय-निर्मल पर्यायका कर्ता निर्मल पर्याय

भगवान पूर्णानंदका नाथ कि जिसका लक्ष करने पर, रागकी अपेक्षा विना निरपेक्षरूप स्वतंत्ररूपसे षट्कारककी पर्यायमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। अरे ! रागादि विकार या मिथ्यात्व परिणाम होते है वह भी षट्कारकके परिणमनसे स्वतंत्ररूप होता है। मिथ्यात्वभाव होते है उसमें कर्मके कारकोंकी अपेक्षा नहीं है। मिथ्यात्वका परिणमन षट्कारकके परिणमन द्वारा स्वतंत्ररूपसे होता है। मिथ्यात्वभाव है वह विकारी है, वह भी स्वयंके षट्कारकोंसे होता है, उसे कर्मके निमित्तकी अपेक्षा नहीं है। जब विकारकी पर्यायको भी–कि जो आत्माका स्वभाव नहीं और कोई ऐसी भी शक्ति नहीं कि विकारको करे फिर भी स्वतंत्ररूपसे स्वयं एक समयके षट्कारकसे होती है, तो फिर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चय मोक्षमार्गकी जो निर्मल पर्याय है वह स्वयं एक समयके षट्कारकसे परिणमित होकर ही उत्पन्न होती है। तथापि निश्चय मोक्षमार्गको त्रिकाली शुद्धद्रव्यकी भी अपेक्षा नहीं है वह व्यवहार रत्नत्रयके रागसे हो ऐसा कैसे बन सकता है ?

मोक्षका मार्ग प्रगट हुआ उस पर्यायको द्रव्यकी भी अपेक्षा नहीं है और व्यवहारके कारकोंकी भी अपेक्षा नहीं है, वह भी षट्कारकके परिणमनसे स्वतंत्ररूपसे उत्पन्न हुई है। सम्यग्दर्शनकी पर्यायका कर्ता पर्याय, सम्यग्दर्शनकी पर्यायका कार्य पर्याय, पर्यायका कारण पर्याय, पर्यायका साधन पर्याय—ऐसी जो सम्यग्दर्शनकी पर्याय है वह भी त्रिकाल परम स्वभावभावसे भिन्न है। क्योंकि जो मोक्षमार्गकी पर्याय होती है वह जब मोक्ष होता है तब नाशको प्राप्त होती है और वह पर्याय तथा त्रिकाली द्रव्य जो अभिन्न हो तो पर्यायका नाश होनेपर पारिणामिक द्रव्यका नाश होता है, लेकिन ध्रुवका कदापि नाश होता नहीं।

शुद्ध पारिणामिक तो त्रिकाल अविनाशी है और जो मोक्षका मार्ग है वह जब

जो राग, द्वेष रु मोहसे परिणाम हो मृष-भाषका।
छोड़े उसे जो साधु, होता है उसे व्रत दूसरा ॥५७॥

परमानंदका पूर्ण लाभ ऐसा जो मोक्ष होता है तब उसका नाश होता है, इसलिये मोक्षमार्गकी पर्याय और वस्तु यदि एक हो तो पर्यायका नाश होने पर वस्तुका नाश हो जाता है इसलिये मोक्षका मार्ग ऐसी पर्याय द्रव्यसे कथंचित् भिन्न है।

द्रव्य-स्वभाव नहीं लेकिन उपशम आदि वीतरागी भाव मोक्षका कारण

इसलिये ऐसा निश्चित हुआ कि शुद्ध पारिणामिकभाव ऐसा त्रिकाली सहजानंद प्रभुका अवलंबन करनेवाली जो भावना–त्रिकाली निजानंद प्रभु वह भाव है और उसके लक्षसे–उसका क्षयोपशम–क्षायिक भाव समस्त रागादि रहित है। उपशमादि भाव समस्त रागादि रहित है अर्थात् कि कोई भी रागका अंश मोक्षमार्ग हो नहीं सकता। जिस भावसे तीर्थंकरगोत्रका बंध हो वह मोक्षका मार्ग नहीं होता, वह उदयभाव है, इसलिये बंधभाव है और जो यह उपशमादि भाव है वह समस्त रागादि रहित होनेसे मोक्षमार्ग है–मोक्षका कारण है। मोक्षमार्ग है वह पर्याय है लेकिन वह किंचित् रागादि रहित है, चौथे गुणस्थानमें जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूपाचरण प्रकट हुआ वह समस्त रागादि रहित है।

उपशमादिक भाव समस्त रागादिसे रहित होनेके कारण शुद्ध-उपादानकारणभूत होनेसे वह मोक्षका कारण है। द्रव्यार्थिकनयका विषय जो वस्तु है वह त्रिकाली शुद्ध उपादान है और उपशमादि है वह पर्यायका शुद्ध-उपादान है। शुद्ध उपादान अर्थात् कि जिससे कारण-कार्य ग्रहण होता है वह उपादान है, वह पर्याय स्वयं कारण और पर्याय स्वयं कार्य अतः उपादानका राग होता है वह अशुद्ध उपादान है, वह कर्मको लेकर नहीं लेकिन अपनी पर्यायको लेकर होता है। और यह मोक्षका मार्ग वीतरागी पर्याय है, वह वीतरागी पर्याय स्वयं ही शुद्ध-उपादानकारणभूत है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका विषय त्रिकाली द्रव्य है, वर्तमान पर्याय त्रिकालीको अवलंबन लेती है। धर्मकी दशा रागका अवलम्बन लेती नहीं; धर्मकी दशा रागका तो अवलम्बन लेती नहीं है, किन्तु स्वयंकी दशाको भी अवलम्बती नहीं है। धर्मकी दशाका विषय तो पर्याय स्वयं नहीं है। वह पर्याय है तो स्वयं स्वतंत्र, लेकिन उसका विषय पर्याय नहीं है। नियमसारमें ऐसा कहा कि उपशमादि तीन भावों है उसे परभाव, परद्रव्य कहकर हेय कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रयका राग तो हेय है, लेकिन निश्चय मोक्षमार्ग वह त्रिकालीकी अपेक्षासे परभाव है अर्थात् कि परद्रव्य है इसलिये वह हेय है। लेकिन यहाँ तो कहते हैं

कानन, नगर या ग्राममें जो देख पर वस्तु उसे-
-छोड़े ग्रहणके भाव, होता तीसरा व्रत है उसे ॥५८॥

कि जो निश्चयमोक्षमार्ग है वह समस्त रागादिसे रहित होनेके कारण शुद्ध-उपादानकारणभूत होनेसे अर्थात् कि उसे कोई निमित्त अथवा व्यवहार मोक्षमार्ग कारभूत नहीं लेकिन उपशमादि भावों मोक्षका कारण हैं।

व्यवहाररत्नत्रयका राग वह वीतरागी मोक्षका कारण नहीं

त्रिकालीके आश्रयसे जो उपशमादि होते है वे समस्त रागादि रहित है और वह शुद्ध-उपादानकारणभूत है, वह मोक्षका कारण है। व्यवहाररत्नत्रयके परिणाम वह राग है। उसका अवलम्बन लेकर मोक्षका मार्ग कैसे प्रकट हो ? त्रिकाली पूर्णानंदका पक्ष लेने पर रागके पक्षसे हटकर, प्रगट हुई वीतरागी दशा वह शुद्ध-उपादानके कारणभूत है, इसलिये वह मोक्षका कारण है, मोक्षका कारण कौन ?–कि जो नित्यानंद प्रभुके आश्रयसे प्रकट हुई दशा वह मोक्षका कारण है। लेकिन शुद्ध-पारिणामिकभाव मोक्षका कारण नहीं। त्रिकाली ध्रुव शुद्धस्वभाव है वह मोक्षका कारण नहीं, लेकिन मोक्षका मार्ग है वह मोक्षका कारण है, मोक्षमार्गकी पर्याय है वह कारण है, त्रिकाली ध्रुव मोक्षका कारण नहीं। मोक्षमार्गकी पर्यायमें जिसका अभाव है ऐसा शुद्ध-पारिणामिकभाव मोक्षका कारण नहीं है, लेकिन मोक्षमार्गकी जो निर्मल पर्याय है वह मोक्षका कारण है।

जो यह व्याख्या चलती है वह प्रकट मोक्षदशाकी बात चलती है, जो शक्तिरूप मोक्ष है वह तो त्रिकाल है। अबंध पारिणामिक वस्तु त्रिकाली द्रव्यस्वभाव तो मुक्त ही है। शक्तिरूप है वह तो शुद्ध-पारिणामिकभाव है, वह तो विद्यमान है, जो शक्तिरूप मोक्ष है वह तो त्रिकाल स्वभावभाव है, वह मोक्ष करना है कि मोक्ष हुआ है ऐसा नहीं है, लेकिन शक्तिरूप मोक्षका आश्रय करके जो पर्याय होती है वह व्यक्तिरूप मोक्ष है। वह व्यक्तिरूप मोक्ष मोक्षमार्गकी पर्यायसे प्राप्त होता है लेकिन द्रव्यसे प्राप्त होता नहीं है। पर्याय है वह मोक्ष प्रगट करता है, त्रिकाली ध्रुवद्रव्य मोक्षको प्रगट करता नहीं कि जड़कर्म मोक्षको प्रगट करता नहीं है। वास्तवमें तो शुद्ध-उपादानकारणभूत होनेसे मोक्षका कारण कहा वह भी अपेक्षित है। बाकी तो मोक्षका मार्ग व्यय होकर मोक्षकी पर्याय हो अर्थात् कि कारण जोर करके मोक्षकी पर्यायको करती है ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्गकी पर्याय बलजोरीसे हठपूर्वक मोक्षमार्गकी पर्यायको कराती है कि आपको होना ही पडेगा-ऐसा नहीं है। (क्रमशः) ✻

जो देख रमणी-रूप वांछाभाव उसमें छोड़ता।
परिणाम मैथुन-संज्ञ-वर्जित व्रत चतुर्थ यही कहा ॥५९॥

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३३ (गाथा-२८)

भेदविज्ञानका महा प्रताप

संसार आत्मासे बाहर नहीं है, आत्माका ही दोष है। संसार वह जीवकी विपरीत बुद्धि है—यह विपरीत श्रद्धा आत्माकी ही पर्यायमें है, कहीं दूर नहीं है। इसलिये स्त्री, पुत्र, परिवार, घर आदि छोड़नेसे संसार छूटता नहीं है लेकिन स्वयंके स्वभावकी श्रद्धा करके शरीरादि परपदार्थोंमें स्वयंपना छोड़नेसे संसार छूटता है। मिथ्यादर्शन छूटे बिना मुक्ति कदापि होती नहीं है।

शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र आदिका अस्तित्व उसके स्वयंमें है। एक समय भी उसका अस्तित्व स्वयंरूप होता नहीं है। उसका कार्य उसमें स्वयंसे होता है। मेरा अस्तित्व मुझमें है। मेरा ज्ञानादि शरीर-वाणी मनकी सहायसे कार्य करता है ऐसा भी नहीं है।

जगतमें प्रत्येकका अस्तित्व है, जीवका अस्तित्व है, शरीर-वाणी आदि जड़का अस्तित्व है और उसमें स्वयंपनेकी बुद्धिरूप जीवकी विपरीत मान्यताका भी अस्तित्व है। नहीं ऐसा नहीं। लेकिन एकका अस्तित्व दूसरेमें नहीं है। ऐसा जानकर निज अस्तित्वमें दृष्टि करे तो ही यथार्थ श्रद्धा और स्व-परका भेदज्ञान होता है।

''भेदज्ञान वह ज्ञान है बाकी बूरो अज्ञान'' आत्मा, विकार और शरीर, वाणी, मन आदि परद्रव्य सभी है सही लेकिन उसमें मेरी उपस्थिति नहीं है। मेरी उपस्थिति-अस्तित्व एक मेरा आत्माके अतिरिक्त अन्य कहीं भी नहीं है। इस प्रकार परमेंसे एकत्वबुद्धि छोड़कर भेदज्ञानका अभ्यास करना वह मुक्तिका उपाय है।

इसलिये ही समयसारमें भगवान अमृतचंद्राचार्यदेव नगारा बजा कर कहते हैं कि 'भेदविज्ञानतः सिद्धा, सिद्धा ये किल केचन, तस्यैव अभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।' अनंतकालके प्रवाहमें अनंत सिद्ध हुए है वे भेदविज्ञानसे ही हुए है और जो कोई बंधे हुए है वे भेदज्ञानके अभावसे ही बंधे है। स्वयंके स्वभावसे भिन्न ऐसा देह, वाणी, मन और रागादि विकल्पसे लक्ष हटाकर स्वयंके स्वभावमें लक्ष करना वह मिथ्यादर्शनकी मुक्तिका

निरपेक्ष-भाव संयुक्त सब ही ग्रन्थके परित्यागका।
परिणाम है व्रत पंचवां चारित्रभर वहनारका ॥६०॥

उपाय है। सम्यग्दर्शनसे लेकर केवलज्ञान तक सभी निर्मलदशाकी प्राप्ति एकमात्र भेदविज्ञानसे ही होती है।

मुनिराजने बहुत संक्षिप्तमें संसार और मोक्षका कारण बतला दिया है। २१वीं गाथासे इस विषयकी बात चली आ रही है। २१वीं गाथामें कहा कि आत्मा लोकालोकका जाननेवाला है, उसमें लोकालोक है और आत्मा है, दोनों अपने अस्तित्वसे है, यह बात आ गई। आत्मा शरीरप्रमाण है ऐसा कहा उसमें आत्मा लोकव्यापक है इस बातका निषेध आ गया। ध्यानमें आत्मा अपने शरीरप्रमाण स्वक्षेत्रमें एकाग्र होता है, लोकप्रमाण क्षेत्रमें नहीं। पुनः कहा आत्मा नित्य है, अनंत सौख्यवान है। अत्यंत आनंदमय, नित्य, लोकालोकको जाननेवाला मैं एक आत्मा हूँ। ऐसे निज आत्माको मैं मेरे ही स्वसंवेदनसे अनुभव कर सकता हूँ। उसमें मुझे कोई परद्रव्यके सहायकी आवश्यकता नहीं है।

एक एक आत्मा सर्वज्ञ शक्तिका धरनेवाला है और प्रत्येक आत्मा अनंत आनंदसे युक्त है। शरीरप्रमाण लघुक्षेत्रवाला होने पर भी भावसे अनंत शक्तिवान है और पर्यायमें पलटता होने पर भी द्रव्यसे नित्य रहनेवाला है।

अनादिकालसे जीव स्वयं स्वभावके स्वसंवेदनके बदले विकारका वेदन करता आया है। शरीर, वाणी, स्त्री, भोजन आदि परद्रव्यका वेदन तो आत्मा कभी करता ही नहीं है, लेकिन उसके लक्षसे होनेवाले पुण्य-पापका रागका-विकारका वेदन आत्मा करता है। वह वेदन ही दुःख और संसार है और मैं विकारसे रहित ज्ञानानंदस्वभावी हूँ ऐसे श्रद्धा ज्ञानपूर्वक पर्यायमें आनंदका वेदन होना-स्वसंवेदन होना उसका नाम मोक्षमार्ग है।

परकी ममतासे आत्मा दुःखके समूहको प्राप्त होता है। परके संयोगसे आत्माको दुःखका अनुभव हो ऐसा कदापि बनता नहीं है। दुःख है और उसका वेदन है, उसका नाम संसार है। जगतमें कहीं पर दुःख है ही नहीं ऐसा कोई मान रहा हो वह तो मिथ्या है। दुःख न हो तो उस दुःखके नाशका उपाय भी रहता नहीं। इसलिये दुःख भी है और उसके नाशका यथार्थ उपाय भी है। अनादिकालसे परसंग करनेसे अज्ञानी जीवको दुःख है और वह परसंग (अभिप्रायमेंसे) छोड़कर स्वयंके स्वभावका आश्रय करना वह दुःखके नाशका उपाय है। इसलिये मैं मन-वचन-कायासे सर्व संग छोड़कर अपने स्वभावका आश्रय लेता हूँ।

(क्रमशः) ✻

मुनिराज चलते मार्ग दिनमें देख आगेकी मही।
प्रासुक धुरा जितनी, उन्हें ही समिति ईर्या है कही ॥६१॥

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

धन्य है उनको.... जो स्वानुभवकी चर्चा करते हैं
चैतन्य स्वभावके श्रवणमें मुमुक्षुका उल्लास

अपरंच तुम्हारा एक पत्र भाईजी श्री रामसिंहजी भुवानीदासजी पर आया था। उसके समाचार जहानाबादसे मुझको अन्य साधर्मियोंने लिखे थे। सो भाईजी, ऐसे प्रश्न तुम सरीखे ही लिखें। इस वर्तमानकाल में अध्यात्मरसके रसिक बहुत थोड़े ही हैं। धन्य हैं जो स्वात्मानुभवकी बात भी करते हैं।'

देखो, ऐसी अध्यात्मरसकी चर्चा करनेवाले जीव उस समय भी विरल थे। स्वानुभवकी तथा सम्यग्दर्शनकी चर्चा करनेवाले जीव २०० वर्ष पूर्व भी विरले ही थे, और तीनोंकालमें अध्यात्मके रसिक जीव जगतमें थोड़े ही होते हैं। अतः अध्यात्मचर्चाके प्रमोदपूर्वक पंडितजी लिख रहे है कि भाईश्री ऐसे प्रश्न आप सरीखे ही लिख सकते हैं। अध्यात्मरसके रसिक जीव बहुत ही थोड़े हैं। जो लोग स्वानुभवकी ऐसी चर्चा कर रहे हैं उनको भी धन्यवाद है। वाह ! देखो ! यह स्वानुभवके रसिक महिमा ! जिसे विकारका रस छूट करके अध्यात्मके रसकी रुचि हुई वे जीव भाग्यशाली है; 'सिद्ध समान सदा पद मेरौ ऐसी अंतरदृष्टि और उसके स्वानुभवकी भावना करनेवाले जीव वास्तवमें धन्य है। इस बातका आधार देते हुए पत्रमें लिख रहे हैं कि–

तत्प्रति प्रीतिचितेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥२३॥

अध्यात्मरसकी प्रीति कहो या चैतन्यस्वभावकी प्रीति कहो उसकी महिमा एवं फल बताते हुए वनवासी दिगंबर संत श्री 'पद्मनंदीस्वामी 'पद्मनंदी पच्चीसी'में कहते हैं कि, इस चैतन्यरसरूप आत्माके प्रति प्रीति चित्तपूर्वक-उत्साहसे उसकी वार्ता (कथा) भी जिसने सुनी है वह भव्य जीव निश्चितरूपसे भाविनिर्वाणका भाजन बन जाता है, अर्थात् अल्पकालमें तो वह अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है, चैतन्यके साक्षात् स्वानुभवकी तो बात ही क्या! परंतु अंतरमें

पैशून्य, कर्कश, हास्य, परनिन्दा, प्रशंसा आत्मकी।
छोड़ें कहे हितकर वचन, उसके समिति वचनकी॥६२॥

उसके प्रति प्रेम जागा अर्थात् रागादिका प्रेम टूटा वह जीव भी अवश्य मुक्ति प्राप्त करेगा। शास्त्रकारने एक खास शर्त रखी है कि 'चैतन्य प्रतिके प्रेमपूर्वक उसका बात सुने; अर्थात् जिसके अन्तरमें कहीं गहराई के किसी कोनेमें भी रागका प्रेम है, रागसे लाभ होगा–ऐसी बुद्धि है उसे चैतन्यका सच्चा प्रेम नहीं है किन्तु रागका प्रेम है, उसको चैतन्यस्वभावके प्रति गहराईसे सच्चा उल्लास नहीं आयेगा। यहाँ तो सुलटे हुए जीवकी बात है। रागका प्रेम तथा शरीर-कुटुम्बका प्रेम तो अनादिसे जीव करता ही चला आया है, किन्तु अब उस प्रेमको तोड़कर चैतन्यका प्रेम जिसने जगाया, वीतरागी स्वभाव रसका रंग जिसने लगाया है वह जीव धन्य है... वह निकट मोक्षगामी है। चैतन्यकी बात सुनते ही अंदरसे रोम रोम उल्लसित हो जाय...असंख्यप्रदेश चमक उठे कि वाह ! मेरे आत्माकी यह कोई अपूर्व नयी बात मुझे सुननेको मिली है...कभी सुना नहीं था ऐसा चैतन्यतत्त्व आज मेरे सुननेमें आया; पुण्य और पापसे अलग ही कोई बात यह है।–इस प्रकार अंतर स्वभावका उत्साह लाकर और बहिर्भावोंका (पुण्य-पाप इत्यादि परभावोंका उत्साह छोड़कर एकबार जिसने स्वभावका श्रवण किया उसका बेडा पार हो गया। श्रवण तो निमित्त है परंतु उसके भावमें अंतराल पड़ गया, स्वभाव और परभावके बीच जरा-सी दरार पड़ गई–(इस वजहसे) वह अब दोनोंका अलग अनुभव करके ही चैन लेगा। 'मैं ज्ञायक चिदानंदघन हूँ, एक समयमें परिपूर्ण शक्तिसे भरा ज्ञान और आनंदका सागर हूँ ऐसी अध्यात्मकी बात सुनानेवाले संत-गुरु भी महाभाग्यसे मिलते है, और ऐसी बात सुननेको मिली तब प्रसन्नचित्तसे अर्थात् उसके अलावा बाकी सभीकी प्रतीति एकबार छोड़कर तथा उसकी ही प्रीति करके, मुझे तो यही समझना है, इसका ही अनुभव करना है ऐसी गहरी उत्कंठा जगाकर, उपयोगको तनिक उस तरफ रुकाकर, जिस जीवने सुना वह जीव जरूर उसकी प्रीति बढ़ाकर आगे चलकर स्वानुभव करेगा, और मुक्तिको प्राप्त होगा। इसलिये कहा कि धन्य है उनको कि जो अध्यात्मरसके रसिक होकर एसे स्वानुभवकी चर्चा करते हैं।

प्रश्न :–जीव अनंतबार त्यागी हुआ और भगवानके समवसरणमें गया, तो क्या उसने शुद्धात्माकी बात सुनी नहीं होगी ?

उत्तर :–देखो, यहाँ प्रसन्न चित्तसे सुननेको कहा है अर्थात् यों ही सुन ले उसकी बात नहीं है, परन्तु अंतरमें चैतन्यका उल्लास लाकर सुने उसकी बात है। क्या सुने ?–कि चैतन्यस्वरूप आत्माकी वार्ता (कथा) सुने। किस प्रकार सुने ? कि उल्लासपूर्वक सुने; रागके

आहार प्रासुक शुद्ध लें पर-दत्त कृत कारित बिना।
करते नहिं अनुमोदना मुनि समिति जिनके एषणा ॥६३॥

उल्लासपूर्वक नहीं; परन्तु चैतन्यके उल्लासपूर्वक सुने। पुण्य-पाप या बाहरकी क्रियाएँ हैं वह चैतन्यका स्वरूप नहीं है, चैतन्यस्वरूप इन सबसे न्यारा है; परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल तथा परभावसे रहित सदा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल व भावसे परिपूर्ण आत्मस्वरूप है।-इसकी बात सुनते ही प्रमोद आ जाय, इसीको यहाँ श्रवण कहा है। ऐसे श्रवण द्वारा शुद्धात्मा लक्षगत किया-यह अपूर्व है। बाकी भगवानकी सभामें बैठा-बैठा भले शुद्धात्माकी बात सुन रहा हो; परंतु अंदरमें यदि रागके पक्ष (रागके आश्रयसे लाभबुद्धि)का सेवन कर रहा हो, व्यवहारके शुभरागकी बात आये वहाँ अंदरमें ऐसा पक्ष हो जाता हो कि 'देखो...यह हमारी बात आई। तो आचार्यदेव कह रहे हैं कि उस जीवने शुद्धात्माकी बात प्रीतिपूर्वक सुनी नहीं है। जीवको शुद्धनयका पक्ष भी पूर्वमें कभी आया नहीं है–ऐसा समयसारमें कहा है, शुद्धनयका पक्ष कहो या चैतन्यकी प्रीति कहो, शुद्धात्माका उल्लास कहो, यह सब एकार्थ ही है। द्रव्यलिंगी जैन साधु होकर भी जो मिथ्यादृष्टि रह गया उसका कारण यह है कि उसे अंतरमेंसे चैतन्यका उल्लास नहीं आया परंतु भीतर भीतर सूक्ष्मरूपसे विकारका ही उल्लास रह गया है। राग करनेसे धर्म होगा–इस प्रकार सीधा-सीधा हो वह नहीं कहता है, परंतु अंतरमें अभिप्रायकी गहराईमें उसे विकारका रस रह जाता है। शुद्ध चैतन्यका लक्ष करे तो ही उसका सच्चा पक्ष किया कहा जाता है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २० का शेष भाग) (छहढाला - प्रवचन)

स्वरूप भी जो विपरीत माने वह आत्माके शुद्ध स्वरूपको कहाँसे जानेगा ? रागी-द्वेषी जीव स्वयं भवका अंत कर सकते नहीं, तो उनकी उपासनासे अन्य जीव कहाँसे पार होगे ? रागी-अज्ञानीको माननेपर तो रागका पोषण होता है। 'देव' अर्थात् इष्टपदको प्राप्त भगवान; इष्ट पद तो वीतरागता और सर्वज्ञता है, क्योंकि जीवोंको सुख इष्ट है और पूर्णसुख तो वीतरागता और सर्वज्ञतामें ही होता है; इसलिये सर्वज्ञ-वीतरागके अतिरिक्त अन्य कोई इष्टदेव नहीं है। अहा, सर्वज्ञ वीतराग देव, जिन्होंने दिव्यध्वनिमें भी बिना इच्छा सर्वज्ञस्वभाव और वीतरागी मोक्षमार्ग बतलाया–इसके अतिरिक्त रागी-द्वेषी या कुवेषधारीको जो पूजता है वह तो बड़ा मूर्ख है, मिथ्यात्वकी पुष्टिसे अनंतकाल वह भवभ्रमणमें भटकेगा और दुःखी होगा। इसलिये दुःखका जिन्हें डर हो और सुखकी जिसे चाह हो वे कुदेवका सेवन तजकर सर्वज्ञ वीतरागदेवको पहिचानो। (क्रमशः)

पुस्तक कमण्डल आदि निक्षेपणग्रहण करते यती।
होता प्रयत परिणाम वह आदाननिक्षेपण समिति ॥६४॥

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

ज्ञेय अधिकार

जगतमें कोई ज्ञेय सचेतन हैं और कोई ज्ञेय अचेतन हैं। जगतमें जीव ही हैं और अजीव हैं ही नहीं—ऐसा माने तो उसका ज्ञान मिथ्या है। अनंत अचेतन पदार्थ भी जगतमें हैं और अनंत चेतन द्रव्य भी है। वे दोनों प्रकारके पदार्थ वे ज्ञानके ज्ञेय हैं। तथा जीव और अजीवमें कर्तृत्व है। वह उनका धर्म है। जीव या जड़ अपने–अपने कर्तृत्वरूप परिणमते हैं—ऐसा ज्ञानका ज्ञेय है, परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको करे—ऐसा ज्ञानका ज्ञेय नहीं है। रागादिभावरूप परिणमता है उसमें जीवका कर्तृत्व है—ऐसा मानना मोक्षमार्गप्रकाशकमें कहा है। वहाँ ऐसा बतलाना है कि वह जीवका कर्तृत्व है, वह रागादि कहीं जड़का कर्तृत्व नहीं है। इसप्रकार भिन्न–भिन्न कर्तृत्व जानकर सम्यग्ज्ञान द्वारा परसे भिन्न आत्माका अनुभव करना वह धर्म है।

यह ज्ञेय अधिकार है। ज्ञेयोंके स्वरूपका वर्णन चलता है।

आत्मामें और सर्व द्रव्योंमें कर्तृत्व नामका गुण है इसलिए प्रत्येक द्रव्य अपना–अपना कार्य करता है ऐसा उसका स्वभाव है, वह ज्ञानका ज्ञेय है। परद्रव्यको छोड़े या ग्रहण करे–ऐसा गुण आत्मामें नहीं है। चरणानुयोगमें निमित्तसे कथन आता है, परन्तु उससे कहीं चरणानुयोगमें आत्मा परका ग्रहण–त्याग कर सके ऐसा नहीं कहा है। अधःकर्मी आहार हो या उद्देशिक आहार हो—उस आहारका छूटना वह तो जड़की क्रिया है। उस समय मुनिको उस आहारके त्यागकी वृत्ति उठे, वहाँ मुनिने सदोष आहारका त्याग कर दिया ऐसा उपचारसे कहा जाता है, परन्तु जड़का कर्तृत्व जड़में है और आत्माका कर्तृत्व आत्मामें ही है। आहारका छूटना वह जड़की क्रिया है। उसके बदले जो ऐसा मानता है कि आहार छोड़नेकी क्रिया मैंने की,—ऐसा जो मानता है उसके मुनिपना नहीं होता और सम्यग्ज्ञान भी नहीं होता। मुनिको सदोष आहारके ग्रहणकी वृत्ति ही नहीं आती। वस्तुस्वरूप जैसा है वैसा यथावत् जानना वह सम्यग्ज्ञान है।

दो पदार्थ भिन्न हैं तो उनका कर्तृत्व भी भिन्न है। दो पदार्थोंकी एक क्रिया नहीं होती

जो गूढ़ प्रासुक और पर-उपरोध बिन भू पर यती
मल त्याग करते हैं उन्हें समिति प्रतिष्ठापन कही ॥६५॥

और एक पदार्थकी दो क्रियाएँ नहीं होती। ''मैं ज्ञायक हूँ''—यह बात अंतरमें बैठनेके पश्चात् अल्प राग हो उसे धर्मी जानता है कि इतना मेरी पर्यायका कर्तृत्व है, यह राग होता है वह मेरा परिणमन है, परके कारण राग नहीं होता। सर्व द्रव्योंका परिणमन स्वतंत्र है, ज्ञाता उसका जाननेवाला है। सर्व द्रव्योंको निज–निज परिणामका कर्तृत्व है और परका अकर्तृत्व है। इसप्रकार ज्ञान ज्ञेयोंको जानता है। मैं अपने परिणामका कर्ता और अनन्त परद्रव्योंके परिणामका अकर्ता हूँ। मुझमें भी अकर्तृत्व है, परद्रव्य मेरे परिणामको नहीं करता और मैं पर द्रव्यके परिणामको नहीं करता। इसप्रकार एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें अकर्तृत्व है।

पुद्गलका कर्ता जीव नहीं है तथा एक पुद्गलका कर्ता दूसरा पुद्गल नहीं है, प्रत्येक द्रव्यका कर्तृत्व अपने–अपनेमें है, परमें तो अकर्तृत्व है।

तथा भोक्तृत्व अर्थात् प्रत्येक द्रव्य अपने–अपने परिणामका भोक्ता है। रागादि परिणाम करे उसे आत्मा स्वयं भोगता है, परन्तु जड़कर्मको आत्मा नहीं भोगता। व्यवहारसे आत्मा आहार ग्रहण कर सकता है—ऐसा भी नहीं है। कोई कहे कि यदि आत्मा नहीं खाता हो तो क्या मुर्दा खाता है? अरे भाई! खानेका अर्थ क्या? वह पुद्गलकी क्रिया है। जड़ पदार्थोंको आत्मा खाता नहीं है। आत्माने खाया ऐसा कथन व्यवहारसे कहा जाता है, परन्तु आत्मा उन जड़ वस्तुओंको खाता है—ऐसा नहीं है।

अभी तो आत्मा आहार ग्रहण करता है और जड़को भोगता है—ऐसा जो मानता है उसे सम्यग्दर्शन भी नहीं है, तब फिर उसे व्रतादि कैसे होंगे? नहीं हो सकते। जड़का भोक्ता जड़ है अर्थात् उसकी एक पर्यायका व्यय होकर नवीन पर्याय होती है। आत्मा अपने रागादि परिणामोंको भोगता है, परन्तु जड़का भोक्ता आत्मा नहीं है। जड़कर्मका भोक्ता भी आत्मा नहीं है। कर्मका विपाक कर्ममें है, आत्मामें कर्मका विपाक नहीं है। ''विपाको अनुभवः'' ऐसा कहा है, वहाँ आत्मा कर्मके विपाकका अनुभव करता है। —ऐसा निमित्तसे कहा है, परन्तु वहाँ वास्तवमें आत्मा उस निमित्तकी ओर झुकाववाले अपने भावकर्मका अनुभव करता है। जड़कर्मका विपाक तो निमित्त है, इसलिए निमित्तरूपसे कर्मके विपाकका अनुभव कहा जाता है, परन्तु वास्तवमें आत्मा परद्रव्यको करे या भोगे यह मान्यता मूढ़ जीवोंका व्यवहार है।

यथार्थ वस्तुस्वरूप ऐसा है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्यका भोक्ता नहीं है। ऐसा ज्ञेय है, उसका यथार्थ ज्ञान करना वह अनुभवका कारण है। जगतमें जितने नाम हैं वे किसी न

कालुष्य, संज्ञा, मोह, राग, द्वेषके परिहारसे।
होती मनोगुप्ति श्रमणको कथन नय व्यवहारसे ॥६६॥

किसी पदार्थको बतलाते हैं, इसलिए वे ज्ञेय हैं। तथा उपलक्षण भी ज्ञानका ज्ञेय हैं। ''ध्यान रखना ! बिल्ली दूध न पी जाय''—ऐसा कहा वहाँ बिल्ली कहने पर उपलक्षणसे कुत्ते आदि भी आ गए। तथा काल और स्थिति भी ज्ञानके ज्ञेय हैं। काल भी पदार्थ है, वह ज्ञानका ज्ञेय है। उसे न माने तो ज्ञानस्वभावकी खबर नहीं है। तथा संस्थान अर्थात् आकार, प्रत्येक पदार्थको अपना–अपना आकार होता है, वह भी ज्ञानका ज्ञेय है। मूलवस्तुका यथार्थ ज्ञान हुए बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता। नवतत्त्व क्या है? जीव–अजीव क्या है? देव–गुरु–शास्त्र क्या है? वह सब जानना चाहिए। विपरीतता रहित निर्णय करके सच्चे देव–गुरु–शास्त्रको जाने और कुदेव–कुगुरु–कुशास्त्रको छोड़े; तब गृहीत मिथ्यात्व छूटता है। जिस तत्त्वका जैसा स्वरूप हो तद्नुसार जानना चाहिए। तथा पदार्थके द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावको भी जानना चाहिए। द्रव्य–क्षेत्र–काल और भाव वे चारों प्रकार ज्ञाताका ज्ञेय हैं।

संज्ञा अर्थात् पदार्थका नाम, तथा उसकी संख्या उसका लक्षण और उसका प्रयोजन–उन सबको भी जानना चाहिए।

वस्तुका तत्स्वभाव है, इसलिए प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य–गुण–पर्यायसे तत्स्वरूप हैं और परद्रव्यसे वे अतत्वस्वरूप हैं। ऐसा वस्तुस्वरूप वह ज्ञानका ज्ञेय है।

तथा पदार्थ स्वसे अस्तिरूप है, परसे नास्तिरूप है, इत्यादि सप्तभंग हैं उसको जानना इसप्रकार सामान्य गुणोंसे सिद्धि है।

पदार्थ सत्तारूप है। सत्ताके महासत्ता और अवांतरसत्ता ऐसे दो भेद हैं। महासत्ता अर्थात् सब है। ऐसा क्यों ? —ऐसा ज्ञेयमें नहीं है। जैसा है वैसा है, इसप्रकार महासत्तारूपसे ज्ञेयको जाननेकी शक्ति ज्ञानकी है। अवांतरसत्ता अर्थात् स्वरूपसत्ता, विशेषसत्ता, पेटाभेदरूपसत्ता, महासत्ता—वह महासत्तारूप हैं और अवांतरसत्तारूप नहीं हैं। उस अपेक्षासे सत्व–असत्वरूप सत्ता है।

त्रिलक्षण = प्रत्येक पदार्थमें उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य हैं, वे महासत्ता अपेक्षासे हैं। सर्व विश्वकी सत्ता उनमें समा जाती है।

अत्रिलक्षण = पेटाभेद अपेक्षासे एक–एक लक्षणवाली है। सर्व द्रव्यकी उत्पाद सत्ता देखें तो सर्व उत्पाद लक्षणवाले हैं, सर्वद्रव्यकी व्ययसत्ता देखें तो सर्व व्यय लक्षणवाले हैं। इसमें वीतरागता ही आती है। (क्रमशः) ✻

किसीको केवलज्ञान पर्यायका उत्पाद हो, कोई करोड़पूर्व चारित्रका पालन करके

जो पापकारण चोर, भोजन, राज, दाराकी कथा।
एवं मृषा-परिहार यह लक्षण वचनकी गुप्तिका ॥६७॥

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

(प्रवचन : १)

तत्त्वनिर्णयकी दुर्लभता

यदि कोई पूछे कि चारित्र क्या है? तो कहते हैं कि चारित्र बाह्य वस्तुमें नहीं है, उपकरण या वस्त्रादिमें नहीं है; किंतु आत्मा अनंतगुणोंका पिण्ड है, उसका ज्ञान प्राप्त करके उसमें स्थिर हो जाना वही चारित्र है। वह चारित्र तो मुनिदशामें होता है। पहले, अतिचार रहित आत्माकी श्रद्धा करनेके बाद ही स्वरूपरमणतारूप चारित्र होता है। आत्मा अनंतगुणोंका निर्मल पिण्ड है। उसकी श्रद्धा और एकाग्रताके बलसे क्षणिक विकारका नाश होता है। किंतु विकार मेरा स्वरूप है, इसप्रकार विकारकी श्रद्धासे विकारका नाश नहीं होता। विकारका नाश करनेके लिए बल कहाँसे आयेगा? वह बल पर वस्तुमेंसे नहीं आता, विकारमेंसे नहीं आता और अवस्थाके भेदमेंसे भी नहीं आता। किन्तु दर्शन, ज्ञान, आनन्द इत्यादि अनंत गुणोंसे अभेद स्वरूप जो वस्तु है (–जिसमें न तो पर है, न विकार है और न भेद है–) उसमेंसे बल मिलता है। उस वस्तुकी जो श्रद्धा है वह सम्यग्दर्शन है। यदि कोई पूछे कि सम्यग्दर्शनमें ऐसी क्या बात है कि सबसे पहले उसीकी बात कही जाती है? तो उसका समाधान करते हुए बताते हैं कि इसका कारण यह है कि सम्यग्दर्शनका विषय सम्पूर्ण वस्तु है और उस वस्तुके बल पर ही चारित्र प्रगट होता है। शुद्ध निर्मल स्वरूपकी श्रद्धाके बलसे चारित्र प्रगट होता है और राग-द्वेषका नाश होता है इसलिए पहले सम्यग्दर्शनकी बात कही गई है। सम्यग्दर्शनके बिना सम्यक् चारित्र नहीं होता।

पहले सम्यग्दर्शन होने पर तथा चारों अनुयोग द्वारा मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान होनेपर चारित्र प्रगट होता है। वे चार अनुयोग कौन कौनसे हैं? यह बताते हैं :— **(१) कथानुयोग (प्रथमानुयोग)**–इसमें तीर्थंकरादि महान पुरुषोंके पवित्र आचरणकी व्याख्या (जीवनचरित्र) होती है। **(२) चरणानुयोग**–इसमें रागको घटानेके और परिणामोंकी शुद्धि बढ़ानेके लिए निमित्तकी प्रधानतासे मोक्षमार्गके आचरणका कथन होता है। **(३) करणानुयोग**–इसमें परिणामोंकी सूक्ष्म बात गणितके अनुसार होती है। गुणस्थान, मार्गणास्थान तथा त्रिलोकरचना आदिका वर्णन आता है। **(४) द्रव्यानुयोग**–इसमें जीवादि

मारण, प्रतारण, बन्ध, छेदन और आकुञ्चन सभी।
करते सदा परिहार मुनिजन, गुप्ति पालें कायकी ॥६८॥

तत्त्वोंका यथार्थ निर्णय पूर्वक आत्मवस्तुकी व्याख्या मुख्यतासे होती है। इन चारों अनुयोगोंके द्वारा मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत पदार्थोंका संशय, विपर्यय, अनध्यवसायादि रहित यथार्थज्ञान होने पर यथार्थ चारित्र होता है। यदि कोई प्रयोजनभूत वस्तु अर्थात् मुख्य वस्तुको न समझकर अन्य सब किया करे तो वह यथार्थ नहीं कहलायेगा। प्रयोजनभूत वस्तुको स्वीकार न करके अन्य वस्तुका स्वीकार करनेवाला एक दृष्टांत यहाँ दिया जाता है—

एक व्यापारीकी दुकानसे एक कास्तकारने पाँचसौ–सातसौ रुपयेका माल और कुछ नगद उधार लिया। बहुत समयके बाद वह अपना हिसाब मिलानेके लिए गया। व्यापारीने एकके बाद एक रकम सुनाना शुरू की, कि देखो भाई ! इन दो नारियलोंके चार आना, बराबर है न ? कास्तकारने कहा, हाँ जी बराबर है। इसके बाद काश्तकारने पावभर मिर्च, सवासेर तेल, ढाईसेर चावल और ऐसी ही अनेक छोटी-छोटी वस्तुओंका स्वीकार किया। इसके बाद जब बड़ी रकम आई कि २५०) नगद लिये थे; तब कास्तकारने उस मूल रकमका इन्कार किया कि अरे ! मैंने नकद रकम कब ली थी ? मुझे तो इसकी तनिक भी खबर नहीं है। इस प्रकार कास्तकारने छोटी छोटी वस्तुओंका स्वीकार करके मूल बड़ी रकम उड़ा दी। व्यापारी समझ गया कि यह तो गजब हो गया। इसने तो मूल रकम ही उड़ा दी अब वह ऋणमुक्त कहाँसे होगा ? इसके बाद जब व्यापारीने उससे आगेका हिसाब सुनाना शुरु किया तो उस काश्तकारने पावभर हल्दी और ऐसी ही चार छह छोटी-छोटी रकमें स्वीकार कर ली; किन्तु जब फिर बड़ी रकम आई कि ५०० नगद तब काश्तकार बोला कि अरे भाई ! मैं तो यह जानता ही नहीं। यहाँ ५०० देखे ही किसने ? इस प्रकार उसने मूल रकमको उड़ाकर शेष छोटी छोटी रकमोंको स्वीकार कर लिया। किन्तु यदि उसने मूल रकमको स्वीकार किया होता और छोटी छोटी दो चार रकमोंको उड़ा दिया होता तो वह नफामें भी समा जाती, किन्तु जब उसने मूल रकमको ही उड़ा दिया तब उसका मेल कैसे बैठे ?

इसीप्रकार शास्त्रोंमें अन्यकी भक्ति करनेकी, दया पालनेकी और ऐसी ही दूसरी बातें आती हैं, तो जीव स्वीकार कर लेता है कि हाँ महाराज ! यदि भक्ति वगैरह की जाय तो धर्म होता है; किन्तु अरे भैया ! उसमें धर्म होनेका कहा है किसने ? भक्तिसे धर्म होता है यह किसने कहा ? दूसरेकी दया और भक्तिसे तो पुण्य होता है, इसके बिना नहीं होता। धर्म तो सम्यग्दर्शनादिसे ही होता है, इसके बिना नहीं होता–जब ऐसी मुख्य बात आती है तब कहता है कि यह बात मेरी बुद्धिमें नहीं बैठती। ऐसा कहनेवाला उपर्युक्त दृष्टांतके अनुसार प्रयोजनभूत

हो रागकी निवृत्ति मनसे नियत मनगुप्ति वही।
होवे असत्य-निवृत्ति अथवा मौन वचगुप्ति कही ॥६९॥

मूल रकमको उड़ा देता है। अरे भाई ! तू पुण्यकी रकमको कबूल करता है लेकिन तत्त्वका भी तो निर्णय कर, अन्यथा तेरा संसारका कर्ज अदा कैसे होगा ? तू कर्जके भारसे चौरासीके अवतारूपी जेलमें पड़ेगा।

बहुतसे जीव पुण्यकी बातको स्वीकार करते हैं, दयाकी बातको मंजूर करते हैं लेकिन जहाँ मूल रकम आती है कि सच्चे देव, शास्त्र, गुरुका तथा आत्माका यथार्थ भान हुए बिना धर्म नहीं हो सकता, वहाँ वे कह देते हैं कि यह बात मेरी बुद्धिमें नहीं जमती। इसलिए यहाँ कहते हैं कि चारों अनुयोगोंके द्वारा मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत तत्त्वका संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय आदिसे रहित यथार्थ ज्ञान होने पर यथार्थ चारित्र होता है और चारित्रदशामें प्रमाद, मद इत्यादि दोष दूर होते हैं। आवश्यक रकमका संशय और विपरीतता रहित यथार्थ ज्ञान चाहिए, विपरीत होने पर यथार्थ धर्मका लाभ नहीं हो सकता। इसलिए अनध्यवसाय (अनिर्णय) भी नहीं चल सकता। सच्चा मार्ग तो यही है, इसके बिना तीन लोक और तीन कालमें मुक्ति नहीं हो सकती। यदि कोई यह कहे कि यह तो एक ही बात कह रहे हैं, तो भाई ! सत्यका मार्ग तो त्रिकालमें एक ही होता है।

आत्मा निर्मल है और राग-द्वेष क्षणिक है, वह आत्माका स्वरूप नहीं हो सकता; आत्मा परका कुछ नहीं कर सकता। यह सुनकर कोई कहे कि हम तो अपनी आंखोंसे देख रहे हैं कि आत्मा शरीरकी क्रिया करता है, खाता है, बोलता है, चलता है, फिर भी आप इन्कार कैसे करते हो ? उसके उत्तरमें कहा जाता है कि भाई ! तूने अपनी आँखोंसे क्या देखा ? शरीर चला– यह देखा किन्तु शरीर उसके कारणसे चलता है वहाँ तू अपने आप मान बैठा है कि मैंने हिलाया, और फिर तू कहता है कि मैंने अपने आँखोंसे देखा लेकिन यह सत्य नहीं, हाँ ! तूने 'बछड़ेके अण्डे'की तरह अपनी आँखोंसे देखा होगा। जैसे कोई कहे कि मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि अण्डा फटकर उसमेंसे बछड़ा निकला, तो उसकी यह बात प्रत्यक्षमें ही असत्य सिद्ध है क्योंकि बछड़ेका अण्डा होता ही नहीं। उसने तूंबीको अण्डा मान लिया और उसके फूटनेकी आवाजसे पासमें ही एक खरगोशका बच्चा भागता हुआ दिखाई दिया। उसे देखकर मूर्ख यह मान बैठा कि अण्ड़ेमेंसे बछड़ेको निकलते ही भागता हुआ देखा है। कैसा भ्रम !

इसीप्रकार, शरीरकी क्रिया जो शरीरके कारण होती है और आत्मा उसे जानता है, उसे बाह्यसंयोगकी ओरसे देखनेवाला अज्ञानी–यह मान बैठा है कि यह शरीरकी क्रिया आत्मामेंसे

(शेष देखे पृष्ठ २८ पर)

कायिक क्रिया निवृत्ति कायोत्सर्ग तनकी गुप्ति है।
हिंसादिसे निवृत्ति भी होती नियत तनगुप्ति है ॥७०॥

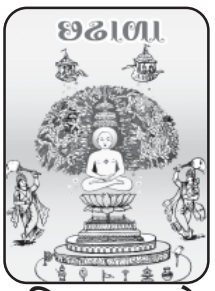

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा ९-१२)

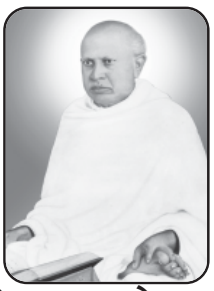

गृहीत मिथ्यादर्शनका स्वरूप और मिथ्यात्वपोषक कुगुरु-कुदेव-कुधर्मका सेवन छोड़नेका उपदेश

गृहीत मिथ्यात्वकी दशामें श्रेणीकराजाने मुनिराज पर उपसर्ग किया और नरककी आयु बंध किया। उपसर्ग दूर होने तक वे मुनिराज तो उसी स्थितिमें समतासे बैठे रहे और श्रेणीकको भी धर्मवृद्धि कहा। जैन मुनिराजकी ऐसी वीतरागताको देखकर श्रेणीकको जैनधर्मकी श्रद्धा हुई, उन्होंने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, और व्रत व त्याग न होने पर भी तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया। इस प्रकार मिथ्यात्वके त्यागसे जीवका हित होता है। बाह्य परिग्रह छोडने पर भी भीतरका मिथ्यात्वको नहीं त्यागा इसलिये जीवका हित नहीं हुआ। एक शुभ विकल्पसे भी आत्माको धर्मका लाभ मानना वह मिथ्यात्व है, वह ही बड़ा परिग्रह है, और वह ही पापका मूल है। मिथ्यादृष्टि जीव बाहरसे त्यागी होने पर भी अंतरमें निष्परिग्रही (राग बिनाका) ऐसे भगवान आत्मस्वभावको उसने अनुभवमें न लिया और रागकी पकड न छोड़ी, इसलिये वह मोक्षमार्ग में नहीं आया लेकिन संसारमार्गमें ही रहा। प्रवचनसार गाथा २३६ (टीका)में आचार्यदेव कहते हैं कि–जिन्हें तत्त्वश्रद्धान लक्षणवाली दृष्टि नहीं अर्थात् कि सम्यग्दर्शन नहीं ऐसे जीव स्व-परके विभागके अभावके कारण काया और कषायोंके साथ एकताका अध्यवसाय करता है, उन जीवोंको विषयोंकी अभिलाषा छूटी नहीं है, इसलिये वे छह जीवनिकायके घाती हैं, इसलिये मोक्षमार्गके कारणरूप संयम उनको होता नहीं है। काया और कषायों (–शुभ या अशुभ) उससे भिन्न स्वयंके उपयोगस्वरूप आत्माको अनुभवमें लिये बिना मोक्षमार्ग होता नहीं है; और ऐसे मोक्षमार्ग बिना गुरुपद होता नहीं है। गुरु तो स्वयंके वीतरागस्वरूपकी साधनामें लीन है, उनको अंतरमें परिग्रह छूट गये हैं इसलिये निमित्तरूप बाह्य परिग्रह भी छूट गया है। अंदरमें रागका अंश या बाह्यमें वस्त्रका धागा ग्रहण करनेकी वृत्ति मुनिओंको कदापि होती नहीं है। गुरुका स्वरूप उससे विरुद्ध मानना कि वस्त्रादि परिग्रह सहित गुरु मानकर पूजना वह कुगुरुसेवन है। गुरुपद अर्थात्

चौंतीस अतिशययुक्त, अरु घनघाति कर्म विमुक्त हैं।
अर्हंत श्री कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त हैं ॥७१॥

मुनिदशा तो जिनलिंगी होती है।

प्रश्न :–कोई कुगुरु आये तो क्या करना ?

उत्तर :–जानना कि यह सच्चे गुरु नहीं है; वह स्वयं भी मिथ्याभावसे दुःखी है और उनका सेवन करनेवाले जीव भी मिथ्याभावकी तीव्रतासे दुःखी ही है,–ऐसा समझकर स्वयंको उनका सेवन छोड़ देना चाहिये। यह कोई किसीके अपमान करनेकी या द्वेष करनेकी बात नहीं है लेकिन स्वयंके आत्माको मिथ्या दोषोंसे बचानेकी बात है। यथार्थ बातमें भी किसीको दुःख लगे तो उसके भाव उसके पास रहे,–उसमें मुझे क्या ? यहाँ तो सम्यक् भाव द्वारा स्वयंका हित कर लेनेकी बात है।

धर्ममें लज्जा नहीं होती, अर्थात् लज्जासे या लोकलाजसे भी कुगुरुओंका सेवन धर्मी जीव करता नहीं है। स्वयंका हित चाहनेवाले जिज्ञासु जीवको दुनियाकी स्पृहा होती नहीं है, दुनिया क्या बोलेगा–वह देखने रुकेगा नहीं। दुनियासे डरकर असत् देव-गुरु-धर्मका वह वेदन करता नहीं है; प्राण चले जाय तदपि सच्चे देव-गुरु-धर्मके विरुद्ध अन्यको माने नहीं। अंतरमें वीतरागताकी रुचि है इसलिये बाह्यमें भी वीतरागताके ही पोषक देव-गुरु-धर्मको मानता है; अंतरमें शुद्ध चैतन्यस्वभावके अतिरिक्त रागका एक कणको भी वह धर्म मानता नहीं है, और बाह्यमें रागके पोषक कुदेव-कुगुरु-कुधर्मको मानता नहीं। इस प्रकार वीतरागमार्गी जीवों नीडर और निःशंकरूपसे आत्महितकी साधना करते है। कोई कुगुरुको बहुतसे लोग मानते है और मैं नहीं मानूँगा तो दुनिया मुझे क्या कहेगी ?—कि समाजमें मैं अकेला हो जाऊँगा !–ऐसा भय धर्मीको होता नहीं है। मात्र शस्त्रधारी या वस्त्रधारी ही कुगुरु हो ऐसा नहीं है, वस्त्र-शस्त्र रहित नग्न-दिगंबर होकर भी जो वीतरागमार्गसे स्पष्टरूपसे विरुद्ध प्ररूपणा करते हैं वे कुगुरु है, उन्हें भी धर्मी जीव मानता नहीं है। भाई, यह तो तेरे हितके लिये बात है।

प्रश्न :–लेकिन कुगुरुके साथ पुराना परिचय हो उसका क्या करें ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–पूर्वका परिचय हो इसलिये कुगुरुका सेवन नहीं करना चाहिये। जैसे कोई बचपनका मित्र हो और विषका सेवन कर रहा हो तो उस मित्रके साथ स्वयं विष सेवन नहीं करना चाहिये (विपरीत उसका निषेध करना चाहिये कि तू विष मत खा।) तू

हैं अष्ट गुण संयुक्त, आठों कर्म-बन्ध विनष्ट हैं।
लोकाग्रमें जो हैं प्रतिष्ठित परम शाश्वत सिद्ध हैं॥७२॥

विष खा रहा है तो मैं भी तेरे साथमें विष खाऊँगा–ऐसा नहीं करना चाहिये। ऐसे मित्रको छोड़ देना चाहिये। वैसे मिथ्यात्वरूपी विषवाले विपरीत मार्गको माननेवाले और उपदेश देनेवाले कुगुरुका विनय और सेवा करनेसे मिथ्यात्वकी पुष्टि होती है, और भावमरणसे आत्मा दुःखी होता है; इसलिये वह छोड़ने योग्य है; और वीतरागी देव-गुरु-धर्मके सत्संग द्वारा यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान करने योग्य है।

जैसे कुगुरु और सच्चे गुरुका स्वरूप बतलाकर कुगुरुका सेवन छुड़वाया, वैसे कुदेव और सच्चे देवका स्वरूप पहिचानकर कुदेवका सेवन भी छोड़नेयोग्य है; क्योंकि कुदेवका सेवन भी मिथ्यात्वकी पुष्टि करनेवाला है।

मूर्ख अज्ञानी जीव राग-द्वेषके कार्यों सहित अथवा गदा-चक्र-बाण आदि हिंसक चिह्नों सहित मनुष्यको भगवान मानकर उसकी उपासना करता है वह कुदेवसेवन है। राक्षसोंका नाश करना और भक्तोंकी मदद करना–ऐसा कार्य वीतरागी भगवान करते नहीं है, भगवानको किसीके प्रति राग-द्वेष होता नहीं है। वीतरागी होनेसे पहले राजा-महाराजा ऐसी सरागदशामें ऐसे भाव आये तो भी देवरूपमें वे पूज्य नहीं है। जब वह सरागभाव छोड़कर, मुनि होकर, वीतराग सर्वज्ञ हुए तब वे देव हुए; और ऐसे सर्वज्ञ वीतराग देव ही पूजनीय है। वीतरागको वीतरागस्वरूपमें न पहिचानकर किसी सरागीको माने तो उसकी मान्यतामें कुदेवका सेवन होता है, लेकिन उससे वीतरागी भगवान सरागी नहीं हो जाते है। सर्वज्ञ वीतरागदेवकी पहिचान करनेवालेको स्वयंके यथार्थ भावका लाभ है, और उसका स्वरूप विपरीत माननेवालेको स्वयंके विपरीत भावका नुकसान है। भगवान स्वयं तो स्वयंके वीतरागस्वरूपमें रमण कर रहे है। जैसे कि भगवान रामचंद्रजी, हनुमानजी वे कुदेव नहीं है, वे तो सर्वज्ञ-वीतराग होकर मोक्षको प्राप्त हुए है और उनको उस स्वरूपमें पूजना वह तो यथार्थ है; लेकिन वे सर्वज्ञ-वीतराग होने पर भी उनको रागी-द्वेषी या शस्त्रधारी स्वरूपमें माने वह सच्चे देवके स्वरूपको जानता नहीं है और अपनी मान्यतामें कुदेवको ही पूजता है। इसी प्रकार अरिहंतदेव सर्वज्ञ-वीतरागी परमात्मा है फिर भी उन्हें वस्त्रादि सहित मानकर कोई पूजे तो अरिहंत भगवान दोषित नहीं हो जाते है लेकिन उनका स्वरूप विपरीत माननेवालेको मिथ्यात्व होता है, उसकी मान्यतामें कुदेवसेवन होता है। अहा ! भगवानका

(शेष देखे पृष्ठ ११ पर)

हैं धीर गुण गंभीर अरु परिपूर्ण पंचाचार हैं।
पंचेन्द्रि-गजके दर्प-उन्मूलक निपुण आचार्य हैं ॥७३॥

शरीरमें रोग आये तब आत्माको क्या करना ?

प्रश्न :–आत्मा चैतन्य स्वरूप है और शरीरसे पृथक् है इस बातको हम मानते हैं, लेकिन जब शरीरमें रोग आये तो उसकी दवा करना चाहिये कि नहीं ?

उत्तर :–आत्मा शरीरसे पृथक् है, और शरीरादि परद्रव्यका कुछ भी कर सकता नहीं है—ऐसा वस्तुस्वरूप जिसे समझमें आया हो उसे उपर किये गये प्रश्न उठनेका अवकाश रहता नहीं है। 'आत्मा शरीरसे पृथक् नहीं लेकिन शरीरका कर्ता हैं'–ऐसी जिसे अज्ञानबुद्धि है उसे ही उपरका प्रश्न उठता है। 'दवा करनी या नहीं करनी' ऐसा प्रश्न तो कब होता है ? यदि दवाकी क्रिया आत्माके आधीन हो तब वह प्रश्न उठता है। जो कार्य करनेके लिये स्वयं समर्थ नहीं और उसके सम्बन्धमें 'मुझे यह करना या नहीं करना' ऐसा सवाल उसे नहीं होता। शरीरकी अथवा दवा लानेकी क्रिया आत्मा कभी कर सकता ही नहीं है। आत्मा तो स्व-परका ज्ञान करता है और ज्यादासे ज्यादा राग-द्वेष-मोहभाव स्वयंमें करता है। जिसको शरीरके उपरका राग हो उसे दवा करनेका विकल्प होता है, लेकिन दवा आना हो तो वह स्वयं उसके कारणसे आती है। आत्मा परका रंचमात्र बदलाव नहीं कर सकता। यहाँ तो आचार्यदेव इस बातको समझाते हैं कि जो रागभाव होता है उसको करनेका कार्य आत्माका नहीं है और स्वयंको भूलकर परको जाननेमें रुके ऐसा ज्ञान भी आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्माके स्वभावकी ओर झुककर जाने वह ज्ञान आत्माका स्वरूप है। जड शरीरकी और दवा करनेकी बात तो अलग है। जड़की अवस्थाएँ प्रतिक्षण जिस प्रकार होना हो उस प्रकार जड़के स्वभावसे हुआ करती है, अज्ञानी जीव स्वयं जाननहार स्वभावको भूलकर उसका अभिमान करता है, ज्ञानी जीव उससे भिन्नता जानकर स्वयंके ज्ञानस्वभावकी ओर झुकता है और राग एवं परका ज्ञाता रहता है।

दवाको, शरीरको, रागको और आत्माको—सभीको एकमेक माने उस जीवको ऐसा प्रश्न होता है कि 'शरीरमें बुखार आये तो उसकी दवा मुझे करना या नहीं ?' लेकिन भाई ! तू सोच तो सही कि 'मैं अर्थात् कौन?' और 'दवा करना अर्थात् क्या ?' 'मैं अर्थात् ज्ञान और दवा अर्थात् अनंत जड रजकण।' क्या तेरा ज्ञान अनंत रजकणकी क्रिया करता है ? 'मुझे खरगोशके सींग काटना या नहीं काटना ?' ऐसा प्रश्न कब हो सकता है ? यदि खरगोशके सींग हो तब ऐसा प्रश्न उठता है। लेकिन जब खरगोशके सींग ही नहीं है तो उसे काटना अथवा नहीं काटना ऐसा सवाल ही नहीं उठता। उसी प्रकार आत्मा परवस्तुका कुछ कर सकता हो तो 'मुझे करना या न करना' ऐसा प्रश्न उठना योग्य है, परंतु आत्मा परका कुछ भी नहीं कर सकता, तो फिर 'मैं परका करूँ' या 'परका नहीं करूँ' यह दोनों मान्यताएँ मिथ्यात्व है।

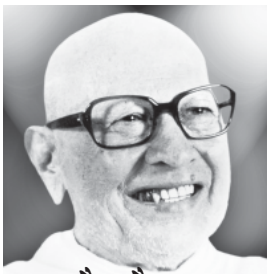

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–तिर्यंचको ज्ञान अल्प होने पर भी आत्मा पकड़में आ जाता है और हम इतनी महेनत करते हैं तो भी आत्मा पकड़में क्यों नहीं आता ?

उत्तर :–ज्ञानमें आत्माका जितना वजन आना चाहिए, वह नहीं आता; स्वरूपप्राप्तिका जितना जोर आना चाहिए, वह नहीं आता; जितना जिसप्रकारका राग छूटना चाहिए, वह नहीं छूटता; इसलिए कार्य नहीं होता अर्थात् आत्मा पकड़में नहीं आता।

प्रश्न :–शुद्धनयका पक्ष हुआ है, इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर :–शुद्धनयका पक्ष होनेका आशय है–शुद्धात्माकी रुचि होना। अनुभव अभी हुआ नहीं है, किन्तु रुचि ऐसी हुई है कि अनुभव होगा ही; परन्तु यह होने पर भी संतोष कर लेनेकी बात नहीं है। केवली इस जीवके सम्बन्धमें ऐसा जानते हैं कि इस जीवकी रुचि इतनी प्रबल है कि अनुभव करेगा ही। इस जीवको ऐसा ज्ञायकका जोर वीर्य में वर्तता है–यह केवली जानते हैं।

प्रश्न :–दीर्घकालसे तत्त्वाभ्यास करने पर भी आत्मा प्राप्त क्यों नहीं हुआ ?

उत्तर :–आत्मा अतीन्द्रिय आनंदका नाथ है, उस अतीन्द्रिय आनंदकी लगन उत्पन्न हो, आत्माके अतिरिक्त अन्यत्र मिठास लगे नहीं, रस पडे नहीं, जगतके पदार्थोंका रस फीका लगने लगे अर्थात् संसारके रागका रस उड़ जाय। अहो ! जिसका इतना विशद् बखान हो रहा है, वह आत्मा अनन्तानंत गुणोंका पुंज प्रभु है कौन ?–ऐसा आश्चर्य उत्पन्न हो, उसकी लगन लगे, धुन चढ़े तब समझना चाहिए कि आत्मा प्राप्त होगा ही; न प्राप्त हो–ऐसा नहीं हो सकता। जैसा कारण होगा, वैसा कार्य होगा ही; कारण उपस्थित हुए बिना कार्य होता नहीं और कारणकी अपूर्णतामें भी कार्य संपन्न करनेकी क्षमता नहीं। आत्माके आनंदस्वरूपकी अंदरसे सच्ची लगन लगे, बैचेनी हो, स्वप्न में भी उसका अभाव न हो, तब समझना चाहिये कि अब आत्मानुभूति अवश्य होगी।

जो रत्नत्रयसे युक्त निकांक्षित्वसे भरपूर हैं।
उवझाय वे जिनवर-कथित तत्त्वोपदेष्टा शूर हैं ॥७४॥

प्रश्न :–आत्माका स्वरूप ज्ञानमें आने पर भी वीर्य बाह्यमें क्यों अटक जाता है?

उत्तर :–जैसा विश्वास आना चाहिए, वैसा नहीं आता है; इसलिए अटक जाता है। जानपना तो ग्यारह अंगका भी हो जाय, परंतु यथोचित भरोसा नहीं आता। भरोसेसे भगवान हो जाय, परंतु वह नहीं आता, इसलिए भटकता रहता है।

प्रश्न :–इसमें रुचिकी कमी है या भावभासनमें भूल है?

उत्तर :–मूलमें तो रुचिकी ही कमी है।

प्रश्न :–हम तत्त्वनिर्णय करनेका उद्यम तो करते हैं, परन्तु बीचमें प्रतिकूलता आ पड़े तो क्या करें?

उत्तर :–जिसको तत्त्वनिर्णय करना है, उसको तत्त्वनिर्णयमें प्रतिकूलता कुछ है ही नहीं। प्रथम तो संयोग आत्मामें आता ही नहीं, संयोग तो आत्मासे भिन्न ही है; इसलिए प्रतिकूल संयोग वास्तवमें आत्मामें है ही नहीं। फिर सातवें नरकमें बाह्यसंयोग तो अनन्त प्रतिकूल है, तथापि वहाँ भी अनादिका मिथ्यादृष्टि जीव तत्त्वनिर्णय करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रतिकूलता आत्मकल्याणमें कोई बाधा नहीं डालती।

जिसको आत्माकी जिज्ञासा जागृत हुई है और सच्चे देव-गुरु निमित्तरूपमें मिले हैं, उसको तत्त्वनिर्णयकी अनुकूलता ही है, प्रतिकूलता किंचित् भी नहीं है। तत्त्वनिर्णय करनेके लिए सच्चे देव-गुरु अनुकूल हैं और अन्तरमें अपना आत्मा अनुकूल है। जिसको सच्चे देव-गुरु निमित्तरूपसे मिले और अंतरमें आत्माकी रुचि हुई, उसको तो सब अनुकूल ही है। अरे! उसे कुछ भी प्रतिकूलता बाधक नहीं है।

प्रश्न :–जो जीव वस्तुस्वरूपका यथार्थ निर्णय नहीं करता, उसकी स्थिति क्या होती है?

उत्तर :–जो जीव वस्तुस्वरूपका यथार्थ निर्णय नहीं करता, उसका चित्त 'वस्तुस्वरूप किस प्रकार होगा?'—ऐसे सन्देहसे सदा डांवाडोल अस्थिर बना रहता है। और स्व-परके भिन्न-भिन्न स्वरूपका उसे निश्चय न होनेके कारण परद्रव्यके कर्तृत्वकी इच्छासे उसका चित्त सदा आकुलित बना रहता है। तथा परद्रव्यका उपभोग करनेकी बुद्धिसे उसमें राग-द्वेषके कारण उसका चित्त सदा कलुषित बना रहता है। इस प्रकार वस्तुस्वरूपके निर्णय बिना जीवका चित्त सदा डाँवाडोल और कलुषित रहनेसे, उसकी स्वद्रव्यमें स्थिरता नहीं हो सकती। जिसका चित्त डांवाडोल तथा कलुषितरूपसे परद्रव्यमें ही भटकता हो, उसे स्वद्रव्यमें प्रवृत्तिरूप चारित्र कहाँसे होगा?–नहीं हो सकता। इसलिए जिसे पदार्थके स्वरूपका निर्णय नहीं, उसे चारित्र नहीं होता।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *वचनामृतमें कहा है कि खटक लगनी चाहिये, तो कैसी खटक ? कृपया उसको समझायें।*

समाधान :—स्वाध्याय, मनन, चिंतन उन सबका 'हेतु' क्या है ? कि मुझे आत्माका स्वरूप प्रकट करना है, मुझे आत्माको पहिचानना है। स्वाध्यायके लिये स्वाध्याय–मनन–चिंतन नहीं, किन्तु उसके पीछे मेरा हेतु क्या है ? (मेरा) ध्येय एक चैतन्यके प्रति है, मुझे चैतन्यस्वभाव प्रकट करना है। मात्र शुभभाव जितना स्वाध्याय–मनन करना ऐसे नहीं; किन्तु मुझे चैतन्यकी प्राप्ति कैसे हो ऐसा 'हेतु' व वैसी 'खटक' होनी चाहिये। मुझे अपने स्वभावकी प्राप्ति कैसे हो, भेदज्ञान कैसे प्राप्त हो और अपने चैतन्यतत्त्वका अस्तित्व—मैं चैतन्य हूँ—वह मुझे कैसे ग्रहण हो ऐसी 'खटक' रहनी चाहिये।

प्रश्न :— *'समयसार' गाथा १७-१८में आता है कि ''अनुभूतिस्वरूप भगवान् आत्मा आबाल–वृद्ध सबके अनुभवमें सदा स्वयं ही आता होनेपर भी''—तो क्या भगवान् आत्माका अनुभव अज्ञानदशामें भी होता है ?*

समाधान :—अनुभूति अर्थात् स्वानुभूतिकी यहाँ अपेक्षा नहीं है। आबालवृद्ध सबको स्वयं वेदनमें आ रहा है अर्थात् ज्ञानस्वभाव स्वयं उनके अनुभवमें आ रहा है; चैतन्यद्रव्य स्वयं अपने ज्ञानस्वभावसे पहिचानमें आये वैसे अनुभवमें आ रहा है, क्योंकि वह ज्ञाता द्रव्य है। वह ज्ञाता द्रव्य स्वयं ज्ञात हो रहा है अर्थात् यथार्थ जाननेमें आ रहा है ऐसा नहीं, परन्तु उसका ज्ञातास्वभाव सबके अनुभवमें आ रहा है। उसमें जड़ताका अनुभव नहीं होता, परन्तु ज्ञाता सबके चैतन्यरूपसे अनुभवमें आ रहा है। यह विकल्प है, यह पर है, यह है–यह है ऐसे विचार किसकी सत्तामें होते हैं ऐसा खयाल करे तो ज्ञाता सबके अनुभवमें आ रहा है; परन्तु स्वयं लक्ष्य दे करके यथार्थरूपसे नहीं जानता। स्वयं अपने ज्ञानस्वभावरूपसे अनुभवमें आ रहा है। ज्ञायक–ज्ञाता वह सबके चैतन्यतारूपसे अनुभवमें आता है। आबालवृद्ध सबके अनुभवमें आ रहा है वह यथार्थरूपसे नहीं, परन्तु उसके

निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं व्यापारसे प्रविमुक्त हैं।
हैं साधु, चउआराधनामें जो सदा अनुरक्त हैं ॥७५॥

स्वभावरूपसे अनुभवमें आ रहा है। जैसे इन वर्ण–रस–स्पर्श–गंध सबमें जड़ता दिखाई देती है उसी प्रकार आत्मामें चैतन्यता दिखाई देती है।

प्रश्न :— *क्या चैतन्यता इतनी स्पष्ट है कि उसे पहिचानना हो तो पहिचाना जा सके ?*

समाधान :—पहिचाना जा सके ऐसी है; स्पष्टरूपसे है, परन्तु स्वयं पहिचानता नहीं है। चैतन्यता तो स्पष्ट है। १७३.

प्रश्न :— *आत्माको पहिचाननेका पुरुषार्थ किस प्रकार करें ?*

समाधान :—उसका बारम्बार विचार करना, उस प्रकारके स्वाध्याय–मनन करना, अंतरमें जिज्ञासा करना, महिमा करना कि आत्मा कैसा अपूर्व होगा ! वह कैसे मुझे प्रकट हो ? विभावकी महिमा गौण करके स्वभावकी महिमा प्रकट करनी। 'मैं चैतन्य हूँ' ऐसा अभ्यास बारम्बार करना। चैतन्यस्वभावके लिये आता है न ?

''समता, रमता, ऊरधता, ज्ञायकता सुखभास;
वेदकता, चैतन्यता, ए सब जीव विलास।''

—इसप्रकार चैतन्य सबके खयालमें आ सके वैसा है। उसमें ज्ञायकता है, समता है, रमता–रम्यभाव है। वेदकता वेदनमें आती है। चैतन्यता सबके ग्रहण हो वैसी है। 'ए सब जीव विलास'—यह सब जीवका विलास है, परन्तु स्वयं ग्रहण नहीं करता; पुरुषार्थ करे तो ग्रहण हो परन्तु अनादिके परके अभ्यासमें पड़ा है इसलिये ग्रहण नहीं होता। अपनी ओरका अभ्यास करे तो अपने समीप ही है, दूर नहीं है।

प्रश्न :— *अनन्तकालमें ऐसा अभ्यास क्या जीवने कभी नहीं किया होगा ?*

समाधान :—जीवने अभ्यास तो किया है, परन्तु अपूर्वता नहीं लगी। अपूर्वता लगनी चाहिये कि यह कुछ अलग ही है ! अंतरमें यथार्थ देशनालब्धि हुई हो तो निष्फल नहीं जाती; इसप्रकार अपूर्वता प्रकट हुई हो तो सफल होती ही है। जीवने अनन्तकालमें सब कुछ किया परन्तु उसमें अपूर्वता नहीं लगी। यह कुछ अपूर्व है, ऐसा स्वयंको अपने आत्माका विश्वास अंतरमेंसे आना चाहिये।

इस भावनामें जानिये चारित्र नय व्यवहारसे।
निश्चय-चरण अब मैं कहूँ निश्चयनयात्मक द्वारसे ॥७६॥

बाल विभाग

प्रभुदर्शन की भावना का फल

राजगृह नगरमें नागदत्त श्रेष्ठी अपनी पत्नी भवदत्ताके साथ रहते हुए धर्मसाधना करता था। एक दिन नागदत्तने सामायिक करते समय प्रतिज्ञा ली कि सामने रखा हुआ दीपक जब तक जलता रहेगा तब तक सामायिक करता रहूँगा। इधर सामायिक करते तृषा सताने लगी और उधर सेठानीने सोचा कि दीपक बूझनेसे अंधकार हो जायेगा ऐसा विचार कर उसमें तेल डालने लगी। तृषाके कारण सेठको सामायिक विसमृत हो गयी और पानी...पानी करते हुए आर्त्तध्यानपूर्वक मृत्युको प्राप्त कर अपने ही घरकी वापिकामें मेंढ़क हुआ इस ओर सेठानीको शेठकी बारबार याद आने पर चित्त कहीं भी लगता नहीं था। एक दिन पानी भरने आयी शेठानीको देखकर मेंढकको जातिस्मरण हो जाता है और उछल कर उसके वस्त्र पर चढ़ता है, किन्तु शेठानी उसे वापस पानीमें धकेल कर आ जाती है। एक दिन उपवनमें सुव्रत नामक मुनिराजसे शेठानी मेंढकके विषयमें पूछती है तब मुनिराज कहते है वह तुम्हारा पति है उसे जातिस्मरण हुआ है यह जानकर सेठानी मेंढकको बहुमानपूर्वक घरमें ले आती है...आगे..

जब भव्यजीवोंका भाग्य पकता है तो सहज कालयोगसे महापुरुषोंका गमन उस ओर हो जाता है। राजगृहीके पवित्र अंचलने वह योग्यता प्राप्त कर ली तो विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीरस्वामीके समवसरणका आगमन हुआ।

समवसरणके आते ही दूर-दूर तक सुकाल हो गया, समस्त ऋतुओंके फल फूल एक साथ आ ये, अन्धोंको दिखने लगा, बहरे सुनने लगे, गूंगे बोलने लगे और लंगड़े चलने लगे, रोगी रोगमुक्त हो गये। तीर्थंकरके पुण्य परमाणु कण-कण में फैल गये। अहो धन्य भाग्य!

वनमालीने समवसरण के आगमनका समाचार राजदरबारमें जाकर राजा श्रेणिकको दिया तो श्रेणिकका रोम-रोम पुलकित हो गया राजा श्रेणिकने राजसिंहासनसे नीचे उतरकर भगवानको स्मरण करते हुए सात कदम चलकर अष्टांग नमस्कार किया तथा मालीको बहुमूल्य पुरस्कार देकर विदा किया।

भव्यजीवोंके हृदय-कमलको प्रफुल्लित करनेवाले भगवान महावीरके आगमनकी सूचनारूप आनंद भेरी सारे नगरमें राजा श्रेणिकने बजवा दी। भगवान महावीरके आगमनका समाचार सुन प्रजाजन आनंद-विभोर हो गये।

श्रेणिक जब धर्मश्रवणकी उमंगोंसे भरकर विपुलाचलकी ओर चले तो अपार जनसमूह

नारक नहीं, तिर्यंच-मानव-देव पर्याय मैं नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥७७॥

आनंदसे नृत्यगान करता हुआ, उनके पीछे-पीछे चलने लगा। सारा नगर पूजनकी सामग्री हाथोंमें लिये भगवानकी जय-जयकार का उद्घोष करता हुआ समवसरणकी ओर जाने लगा।

मनुष्य, तिर्यंच, देव, नर-नारी, पशु-पक्षी, सिंह-बाघ, गाय, कुत्ते, बिल्ली आदि समस्त प्राणी परस्परके वैरभावको भूलकर समवसरणकी ओर जा रहे थे, वीतरागीका दरबार तो सदा सबके लिये खुला था, धन्य था वह दरबार! धन्य थे वे भव्यजन! और धन्य था वह पावन दृश्य!

मेंढकने जब आनन्दभेरी सुनी और जय-जयकार करते हुए लोगोंको जाते देखा तो पूर्वस्मरणज्ञानसे उसके भी धर्मसंस्कार पुनः प्रस्फुटित हो गये, उसका मन भी जिनदर्शनके लिये तड़फने लगा, भगवानकी भक्ति और पूजनका अपार उत्साह उसके हृदयमें उमड़ने लगा, पर वह निरीह था...मूक था...असमर्थ था... कैसे भगवानके समवसरणमें जाऊँगा? –ऐसा विचारकर पश्चाताप करने लगा। अरेरे! दुर्लभ मनुष्य पर्यायको मैंने वृथा गँवा दिया।

"हे आत्मन्! तूने यदि यह मनुष्यत्व काकतालीय न्यायसे प्राप्त किया है तो तुझे आत्माका निश्चय करके अपना कर्त्तव्य सफल कर लेना चाहिये। तू देहकी जितनी चिन्ता रखता है, उससे अनन्तगुणी चिन्ता आत्माकी रख, क्योंकि अनन्तभवोंका अभाव एक भवमें करना है। अनियमित और अल्प आयुष्यवाले इस देहमें आत्मार्थका लक्ष सबसे प्रथम कर्त्तव्य है।"

जब न रहा गया तो वह मेंढक भी मुखसे एक पुष्पको दबाकर भक्ति के उत्साहमें उछलता कूदता हुआ समवसरणकी ओर चल पड़ा। अपार भीड़ और हाथी-घोड़ोंके बीच वह बचता निकलता चला जा रहा था, भक्तिकी धुनमें उसे याद न रहा कि विपुलाचल पर्वत पर बीस हजार सीढ़ियों ऊपर समवसरणमें मैं कैसे पहुँचूंगा? मानों अभी तुरन्त ही भगवानके दर्शन और पूजन करूँ–ऐसी उमंग मनमें लिये चला जा रहा था।

पर अरे! गजराज पर गर्वसे चलनेवालोंको इसकी क्या खबर कि उनके पगतले कितने मूक प्राणी रोंदे जा रहे हैं।

रे रे दुर्भाग्य! श्रेणिकके मदमाते हाथीने उस निरीह मेंढकको पैरसे कुचलकर उसका

मैं मार्गणाके स्थान नहिं, गुणस्थान-जीवस्थान नहिं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥७८॥

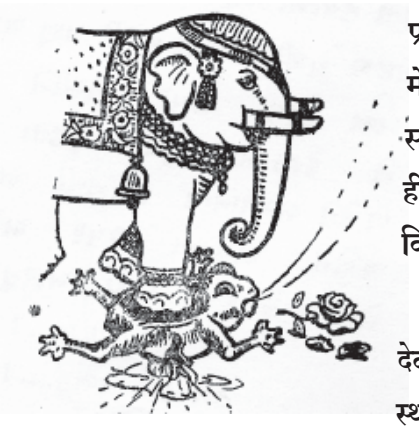

प्राणान्त कर दिया, उसकी जीवनयात्रा वहीं समाप्त हो गई। मेंढककी जीवन यात्रा तो समाप्त हो गई, पर उसकी भक्तियात्रा समाप्त न हो पायी और उस भक्तिके पवित्र परिणामसे क्षणमें ही स्वर्गका महर्द्धिक देव हो गया। सेठकी पर्यायमें की धर्म विराधनाका प्रतिकार मेंढककी पर्यायमें कर लिया।

तत्काल अवधिज्ञान से भगवत् भक्तिके प्रभावसे देवपर्यायमें उत्पाद जानकर अपनी ध्वजामें मेंढकका चिह्न स्थापित कर साक्षात् भगवानके दर्शन और जिनध्वनि श्रवणके लिये चल दिया। अहो! धन्य है भगवद्भक्तिकी महिमा! जिसकी अनुमोदना मात्रसे मेंढक क्षणमें स्वर्गका देव हो गया, तो उनके साक्षात् दर्शन और श्रवण के फलस्वरूप आत्मानुभूतिपूर्वक मुक्ति हो–इसमें क्या आश्चर्य है।

(पृष्ठ १७ का शेष भाग) (मुक्तिका मार्ग)

हुई और मैंने उसे अपनी आँखोंसे देखा। लेकिन अरे भाई ! आत्मा परका कुछ कर ही नहीं सकता तो फिर तूने अपनी आँखोंसे कहाँसे देखा ? तेरे देखनेमें गलती है, तू संयोगको देखता है स्वभावको नहीं देखता, अतएव यह बात ठीक न जम जाय कि आत्मा परका कुछ कर ही नहीं सकता तब तक तू तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेमें लगा रहा। सर्वज्ञकी बातमें अन्तर नहीं पड़ सकता। इसलिए जब तक सर्वज्ञके कथनानुसार तेरे ज्ञानमें बात बैठ न जाय तब तक श्रवण- मनन करके ज्ञान प्राप्तिका प्रयत्न करता रह। बापदादाके लिखे हुए बहीखातेकी कोई बात यदि समझमें नहीं आती तो कहता है कि पिताजी तो बहुत हुशियार थे; उनकी भूल नहीं हो सकती, मेरी ही गलती होगी। इसप्रकार जबकि बापके बहीखातेमें शंका नहीं करता तब फिर जिनवाणीमें विश्वास क्यों नहीं करता कि परमात्मा सर्वज्ञदेवकी भूल नहीं हो सकती। सर्वज्ञभगवानके कथनानुसार प्रयोजनभूत रकमकी सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही सम्यक्चारित्र होता है और सम्यक्चारित्र होने पर कर्मोंका नाश होता है। कर्मोंका नाश होने पर सर्व जीवोंको प्रिय ऐसा सुख प्रगट होता है, इस प्रकार सम्यग्दर्शन ही सुखकी नींव है। (क्रमशः)

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-१५ से ६-३५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१९वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री पंचास्तिकाय संग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी
९२वीं सम्यक्त्वजयंती पत्रिका लेखनविधि सानंद संपन्न

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका ९२वाँ सम्यक्त्व-जयंती महोत्सव अमरेली, चित्तल, सावरकुंडला, कानातळाव, लाठी, मोटा आंकडिया (मुख्य संयोजक दिनेशचंद्र दामोदरदास महेता) द्वारा मनाया जानेवाला है। उसकी आमंत्रण-पत्रिकाकी लेखनविधि महा वद-८, ता. ३-३-२०२४ रविवारके दिन सानंद संपन्न हुई। प्रातः जिनेन्द्रपूजनके पश्चात् सर्व मुमुक्षु भाई-बहिन जामनगरनिवासी वाधर परिवारके निवासस्थान गये थे। वहाँ भक्ति सह पत्रिकाकी वधाई की गई। पश्चात् पत्रिकाको गाजे-बाजेके साथ बहिनश्रीके निवासस्थान होकर पत्रिकाको स्वाध्यायमंदिरमें लायी गयी। पूज्य गुरुदेवश्रीके सीडी प्रवचनके पश्चात् पत्रिकाका वांचन मुमुक्षु मंडलोंकी ओरसे वसई निवासी श्री धवलभाई दिनेशचंद्र दामोदरदास महेता द्वारा किया गया तत्पश्चात् पत्रिका लेखनविधि भक्तिमय वातावरणमें सानंद संपन्न हुई।

* मानस्तंभका ७२वाँ वार्षिक प्रतिष्ठा दिन *

चैत्र शुक्ला-१० ता. १८-४-२०२४, गुरुवारके दिन सोनगढके श्री मानस्तंभके प्रतिष्ठाका ७२वाँ वार्षिक दिन पूजा-भक्तिके विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

* पूज्य बहिनश्रीका जातिस्मरण वार्षिक दिन *

चैत्र कृष्णा-८ ता. १-५-२०२४, बुधवारके दिन पूज्य बहिनश्रीका जातिस्मरणका वार्षिक दिन है। यह प्रसंग पूजा-भक्तिके विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

भगवान श्री महावीर जन्मोत्सव तथा पूज्य गुरुदेवश्रीका ९०वाँ संप्रदाय परिवर्तन दिन
एवं पूज्य गुरुदेवश्रीका १३५वाँ जन्मोत्सव पत्रिका लेखन विधि

भगवान श्री महावीरका जन्मकल्याणक महोत्सव एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका ९०वाँ संप्रदाय परिवर्तन महोत्सव चैत्र शुक्ल १३ ता. २१-४-२०२४ रविवारके दिन सुवर्णपुरीमें विशेष पूजन-भक्तिपूर्वक स्टार ऑफ इन्डियावाले स्व. हीराचंदभाई त्रिभोवनदास दामाणी परिवारकी ओरसे आनंदोल्लास सह मनाया जायेगा। और पूज्य गुरुदेवश्रीका १३५वाँ जन्मोत्सव कि जो श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लींबडी-जोरावरनगर दिगम्बर जैन संयुक्त संघकी ओरसे मनाया जानेवाला है यह महोत्सवकी पत्रिका लेखनविधि भी रखी गई है। यह मंगल अवसर पर सभी मुमुक्षुओंको सोनगढ पधारनेका हार्दिक निमंत्रण है।

आत्मधर्म के ग्राहकों के लिए

आत्मधर्मके सभी ग्राहकोंको विदित है कि हिन्दी आत्मधर्म प्रत्येक महिनेकी ५ तारीखको प्रकाशित किया जाता है और हमारी **website : www.kanjiswami.org** पर भी अपलोड किया जाता है। यदि आपको आत्मधर्म अंक डबल आते हो, बंद करना हो, एड्रेस बदल गया हो **whatsApp** से मंगवाना चाहते हो वे अपने **whatsApp**से निम्नोक्त विवरण दिये गये फोन पर बता सकते है।

email : contact@kanjiswami.org

(Mo) 9276867578 – Ashishbhai / (Mo) 9737154108 – Nirmalkumar

ग्राहक नं. ..... भाषा : हिन्दी

एड्रेस : _____

_____

गाँव/शहर _____

मोबाईल नं. _____ सही

मैं आत्मधर्म मंगवाना चाहता हूँ / बंद करना चाहता हूँ / **whatsApp** से मंगवाना चाहता हूँ। _____

संपादक, आत्मधर्म कार्यालय : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (जि. भावनगर)

बालकोंके लिये दिये गये फरवरी-२०२४ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) सुख
(२) धर्मी
(३) पहाड
(४) अनंत
(५) ग्राहक
(६) मोक्ष
(७) निश्चयका
(८) सुखका
(९) निश्चय
(१०) समयसार
(११) बाह्य
(१२) उपयोग
(१३) निश्चय
(१४) सम्यक्दर्शन
(१५) उमास्वामी
(१६) ११
(१७) अंतर
(१८) ४३
(१९) अरिहंत - सिद्ध
(२०) आचार्य उपाध्याय साधु

श्री आदिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक महोत्सव दि. १९ से २६ जनवरी २०२४ को सुवर्णपुरीमें सानंद संपन्न हुआ। इस मंगलकारी प्रतिष्ठा महोत्सवका 'प्रतिष्ठा समाचार अंक'का कार्य चल रहा है, जो संपन्न होने पर शीघ्र ही प्रकाशित किया जायेगा।

(१२७)

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न-15 : सिद्ध भगवानको कर्मका उदय आये तो वे अवतार लेंगे या नहीं?

उत्तर : सिद्ध भगवानको कभी कर्मका उदय आता नहीं और उन्हें कभी भी अवतार नहीं होता, वे तो जन्म-मरणसे रहित हुए हैं।

प्रश्न-16 : सम्यग्दर्शन है वह पुण्य है या पाप?

उत्तर : सम्यग्दर्शन वह पुण्य नहीं है लेकिन धर्म है और वह गुण नहीं लेकिन श्रद्धागुणकी पर्याय है।

प्रश्न-17 : जब आत्माका मोक्ष हो तब कैसा आकार होता है?

उत्तर : अंदाजित आखरी शरीर जैसा (उससे कुछ न्यून) आकार होता है।

प्रश्न-18 : जगतमें द्रव्य कितने है ? और उसमें सबसे बड़ा द्रव्य कौनसा ? सबसे महत्तावाला कौनसा? सबसे न्यून कौनसा?

उत्तर : जगतमें छह द्रव्य हैं, आकाश द्रव्य सबसे बड़ा द्रव्य है; जीव द्रव्य सबसे महत्तावाला द्रव्य है क्योंकि वह सभी द्रव्योंको जाननेवाला है; पुद्गल परमाणु एवं कालाणु सबसे छोटे हैं।

प्रश्न-19 : कोमल स्पर्श वह अनुजीवी गुण है या प्रतिजीवी?

उत्तर : कोमल स्पर्श वह गुण नहीं है, पर्याय है। पुद्गल द्रव्यके स्पर्श नामके अनुजीवी गुणकी वह पर्याय है।

प्रश्न-20 : सूक्ष्मत्व अर्थात् क्या? 'सूक्ष्मत्व वह आत्माका अनुजीवी गुण है' यह कथन बराबर है?

उत्तर : सूक्ष्मत्व अर्थात् इन्द्रियोंके विषयरूप स्थूलताका अभाव; सूक्ष्मत्व वह आत्माका अनुजीवी गुण नहीं है लेकिन प्रतिजीवी गुण है।

प्रश्न-21 : काल द्रव्य किसे कहते है?

उत्तर : वस्तुओंके परिणमनमें जो निमित्त हो उसे कालद्रव्य कहते हैं। समय, मिनिट, घंटा आदि उसकी पर्याय हैं।

प्रश्न-22 : चंद्र उदित हुआ, सूर्य अस्त हुआ—उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किस प्रकारसे है? बताओ।

उत्तर : चंद्र और सूर्य दोनो अलग वस्तु है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक ही वस्तुमें होती है, दो अलग वस्तुमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लागु नहीं हो सकती।

प्रश्न-23 : जीव द्रव्यमें दो अगुरुलघुत्व गुण हैं, वह सामान्य है या विशेष? और अनुजीवी है या प्रतिजीवी?

उत्तर : जीव द्रव्यमें एक अगुरुलघुत्वगुण सामान्य है और एक विशेष है। उसमेंसे जो सामान्य है वह अनुजीवी और विशेष है वह प्रतिजीवी है।

प्रश्न-24 : धर्मास्तिकाय यहाँसे जिनमंदिर तक जाय उसमें कौनसा द्रव्य निमित्त है?

उत्तर : धर्मास्तिकाय द्रव्य स्थिर है, वह गति करता नहीं, लेकिन गति करते हुए दूसरोंको निमित्तरूपमें परिणमित होता है।

प्रश्न-25 : निगोदको स्थावर जीव कहा जा सकता है या नहीं? और स्थावर जीवको निगोद कहा जा सकता है?

उत्तर : निगोदको स्थावर जीव कहा जा सकता है लेकिन सभी स्थावरको निगोद नहीं कहा जा सकता। निगोदके अतिरिक्त दूसरे भी स्थावर है।

प्रश्न-26 : अस्तिकाय कितने है? कितने नहीं है?

उत्तर : कालके अतिरिक्त पाँच द्रव्य अस्तिकाय है; काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं, एक पुद्गल परमाणु भी अस्तिकाय नहीं है। लेकिन उसमें स्कंधरूप होनेकी शक्ति होनेसे उसे अस्तिकायमें गिना जाता है।

प्रश्न-27 : अस्तिकाय वह द्रव्य, गुण है या पर्याय?

उत्तर : अस्तिकाय वह अनेक प्रदेशवाला द्रव्य है। जो द्रव्य अनेक प्रदेशवाला हो उसे अस्तिकाय कहा जाता है।

प्रश्न-28 : वेदनीयकर्मके नाशसे कौनसा गुण प्रगट होता है? वह अनुजीवी है या प्रतिजीवी?

उत्तर : अव्याबाध गुण प्रगट होता है वह प्रतिजीवी गुण है।

प्रश्न-29 : अभव्यत्व वह अनुजीवी है या प्रतिजीवी?

उत्तर : अभव्यत्व वह अनुजीवी है क्योंकि वह कोई परके अभावकी अपेक्षा रखता नहीं है।

प्रश्न-30 : कोई त्यागी हो लेकिन मिथ्यादृष्टि हो उसे ज्यादा पाप लगता है या लडाईमें खड़े सम्यग्दृष्टि चक्रवर्तीको ज्यादा लगता है?

उत्तर : मिथ्यादृष्टिको मिथ्यात्वका अनंतगुना पाप प्रतिक्षण लगता है और सम्यग्दृष्टिको लडाईमें भी अनंत पापका नाश हो गया है इसलिये उन दोनोंमें मिथ्यादृष्टिको ही अधिक पाप लगता है। मिथ्यादृष्टिको सच्चा मुनिपना भी होता नहीं है।

(१२७)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

नीचे दिये गये प्रश्नोंके छहढालाकी तीसरी ढालमेंसे मिलेंगे।

(१) सम्यक्त्वादि वीतरागभाव वह सत्य ..... है।

(२) रागादि भावोंसे रहित शुद्धभाव वह ..... है।

(३) ज्ञान वह आत्माका ..... ही है इसलिये ज्ञान आत्मासे कभी पृथक् नहीं होता है।

(४) मुमुक्षु जीवको ..... पदके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी साध्य नहीं है।

(५) साधकदशाका ..... समय होता है।

(६) साध्यरूप मोक्षदशाका काल ..... है।

(७) ..... पूर्वक ही सत्य व्यवहार होता है।

(८) सम्यग्दर्शनके साथ धर्मीको ..... आदि आठ गुण होते हैं।

(९) ..... पुण्यकी इच्छा करता है।

(१०) ..... के शरीरमें रोग अथवा अशुचि होती नहीं है।

(११) सम्यक्दर्शन ..... धर्मके अतिरिक्त दूसरे धर्ममें नहीं हो सकता।

(१२) मोक्षप्राप्ति हेतु ..... की मुख्य जरूरत है।

(१३) सातवेंसे बारहवें गुणस्थानवर्ती शुद्धोपयोगी मुनि ..... अंतरात्मा है।

(१४) देशव्रती श्रावक और महाव्रती मुनि ..... अंतरात्मा है।

(१५) अरिहंत भगवानको ..... और ..... गुणस्थान होते हैं।

(१६) अपने बड़प्पन और आज्ञाका गर्व करना सो ..... है।

(१७) भूतार्थ स्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन वह समयसारकी ..... वीं गाथामें कहा है।

(१८) बहिरात्मदशामें तो एकांत ..... ही है।

(१९) मोक्षशास्त्र संस्कृतमें ..... स्वामीने लिखा है।

(२०) जो जीव ..... हो उसे सर्वज्ञ परमात्माकी श्रद्धा नहीं होती है।

श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लींबडी-जोरावरनगर दिगम्बर जैन संयुक्त संघ द्वारा

अध्यात्म-अतिशयतीर्थ सोनगढ़में सानन्दोल्लास सम्पन्न होनेवाला

अध्यात्ममार्गप्रकाशक, ज्ञायकयुगप्रवर्तक, स्वानुभवविभूषित

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका १३५वाँ

मंगल जन्मजयन्ती-महोत्सव

अत्यन्त हर्षोल्लास सह निवेदन है कि–हमारे परम-तारणहार परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका आगामी १३५वाँ वार्षिक मंगल जन्मोत्सव अध्यात्म-साधनातीर्थ सुवर्णपुरी (सोनगढ़)में श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लिंबडी-जोरावरनगर दिगम्बर जैन संयुक्त संघकी ओरसे अति आनन्दोल्लासपूर्वक मनाया जानेवाला है।

तदनुसार पूज्य गुरुदेवश्रीकी आगामी १३५वीं जन्मजयन्ती (वैशाख शुक्ला दोज)का मंगल महोत्सव सुवर्णपुरीमें ता. ५-५-२०२४, रविवारसे ता. ९-५-२०२४, गुरुवार–पाँच दिवसीय 'श्री सुवर्णपुरीमें विराजमान भगवंतोंका पूजन विधान', पूज्य गुरुदेवश्रीके आध्यात्मिक सी.डी.–प्रवचन, प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी विडियो धर्मचर्चा, धार्मिक शिक्षणवर्ग, एवं भजनमण्डली द्वारा देवगुरुभक्ति तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इत्यादि अनेकविध रोचक कार्यक्रम सह मनायी जायेगी। साथमें भव्य जिनमंदिरोंके दर्शन-पूजन, और नूतन प्रतिष्ठित श्री जंबूद्वीप जिनविम्ब एवं श्री बाहुबली मुनीन्द्रके दर्शनका भी लाभ मिलेगा।

गुरुभक्तिके इस अनुपम अवसरसे लाभान्वित होनेके लिये गुरुभक्त सभी मुमुक्षुओंको सोनगढ़ पधारनेके लिये हमारी ओरसे हार्दिक निमंत्रण है। आवास एवं भोजनव्यवस्था निःशुल्क रखी गई है।

[यह महोत्सवकी निमंत्रण पत्रिकाकी लेखनविधि सोनगढमें ता. २१-०४-२०२४ रविवारके दिन है। सभी मुमुक्षुओंको सादर निमंत्रण है।]

निमंत्रक —

श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लिंबडी-जोरावरनगर

दिगम्बर जैन संयुक्त संघके जय-जिनेन्द्र

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• स्वयंने स्वयंकी दया न की अर्थात् अपना अनन्त चैतन्य-ज्योतिरूप जीवका (नित्य) उद्योतमय जीवन है उसको तो न माना; परन्तु मैं रागादिरूप हूँ—ऐसा स्वीकार किया ऐसी मान्यता ही स्वयंकी हिंसा है। जैसा है-वैसा न मानना ही स्वहिंसा है।६१७।

• ईर्या—स्वभावको जानकर उसमें रमना।

भाषा—स्वभावरूप परिणति होना।

ऐषणा—स्वभावकों शोध कर उसमें लीन होना।

आदान-निपेक्ष—जिसको ग्रहण किया है उसका त्याग नहीं करता व जिसको नहीं पकड़ा है उसका ग्रहण नहीं करता—ऐसे स्वभावके आश्रयसे निर्मलपर्याय-लेना व रागका त्याग होना।

प्रतिष्ठापन—पाप-पुण्य कि जो विष है, उसका त्याग और वीतरागताकी उत्पत्ति। यह भाव-समितिकी व्याख्या है।६२०।

• वीतरागकी वाणी सुनते हुए कायर काँप उठते हैं, जब कि वीर (बोधोल्लाससे) उछल पड़ते हैं।६२१।

• ध्रुव और पर्यायको सर्वथा एक मानना-दृष्टिके विषयरूप मानना—यह एकत्वबुद्धि-मिथ्यात्व है।—उसे पर्यायबुद्धि कहते हैं; वह द्रव्यबुद्धि नहीं है।६२२।

• चैतन्यसूर्यके प्रकाशमें रागरूप अंधकारका आदर कैसे हो ? जिसे ज्ञान-स्वरूपका ज्ञान है वही ज्ञानी है।६२३।

• भाई ! अधीर न होना। तेरा ज्ञातृत्व छोड़कर ''मैं जगतको समझा दूँ''—ऐसा अभिप्राय न रखना।६२४।

• अनन्तके नाथ (निजात्माको) नहीं जाना इसीलिए अनन्त भव करने पड़े हैं। ६२५।

• जो स्वात्माको ध्येय बनाकर उसकी साधना नहीं करते, वे सभी बेभान हैं। ६२६।

• जो अपनेमें है उसे अपना न मानना तथा जो अपनेमें नहीं है उसे अपना मानना -यही दुःखका कारण है।६२७।

३६
आत्मधर्म
अप्रैल-२०२४
अंक-८ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-04-2024
Posted on 5-04-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org